

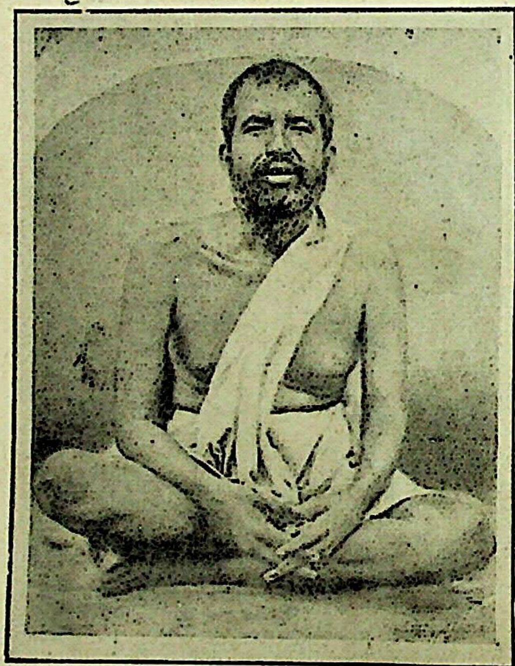


ब्राह्मणत्व-विवेक



म० पं० मदनमोहन मालवीय

आप जन्म से और कर्म से भी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं।



परमहंस महात्मा रामकृष्ण

ॐ तत्सत्

ब्राह्मणत्व-विवेक

तथा

वर्ण-व्यवस्था

अर्थात्

ब्राह्मण कौन है ?

वेद, धर्मशास्त्र, इतिहास-पुराण-धम्मपद-प्रभृति आर्ष [ऋषिप्रणीत]
शास्त्रों द्वारा सद्-ब्राह्मण के स्वरूप, लक्षण, गुण-
वृत्त और कर्त्तव्य का निर्णय।

जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मो ह्यर्थमेव च।
अहोरात्राश्च पुण्यार्थं तं देवाः ब्राह्मणं विदुः॥
[महाभारत-शान्तिपर्व]

सङ्कलन-कर्त्ता
श्री नारायणदास बाजोरिया

प्रथम संस्करण १०००] संवत् २००१ [मूल्य— पक्षपात-रहित विवेक-पूर्वक पढ़ने की प्रतिज्ञा

प्रकाशक

नारायणदास बाजोरिया, ट्रस्टी

सेठ जगन्नाथजी बाजोरिया धर्मार्थ-निधि,

(Seth Jagannath Bajoria Charitable Trust)

मुद्रक

विश्वनाथ प्रसाद

ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी।

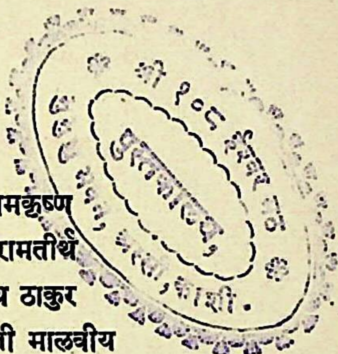
मिलने का पता

(१) ११७ हरिसन रोड, कलकत्ता

(२) वंशीधर श्रीमोहन, विश्वेश्वरगंज, काशी

(३) पं० बस्तीराम, पाठशाला, कनखल (हरिद्वार)

समर्पण



परमहंस महात्मा श्री रामकृष्ण
परमहंस महात्मा श्री रामतीर्थ
कवि श्रेष्ठ श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
पूज्य महामना मदनमोहनजी मालवीय
पूज्य श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

(जो जन्म तथा कर्म दोनों से ही श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं)

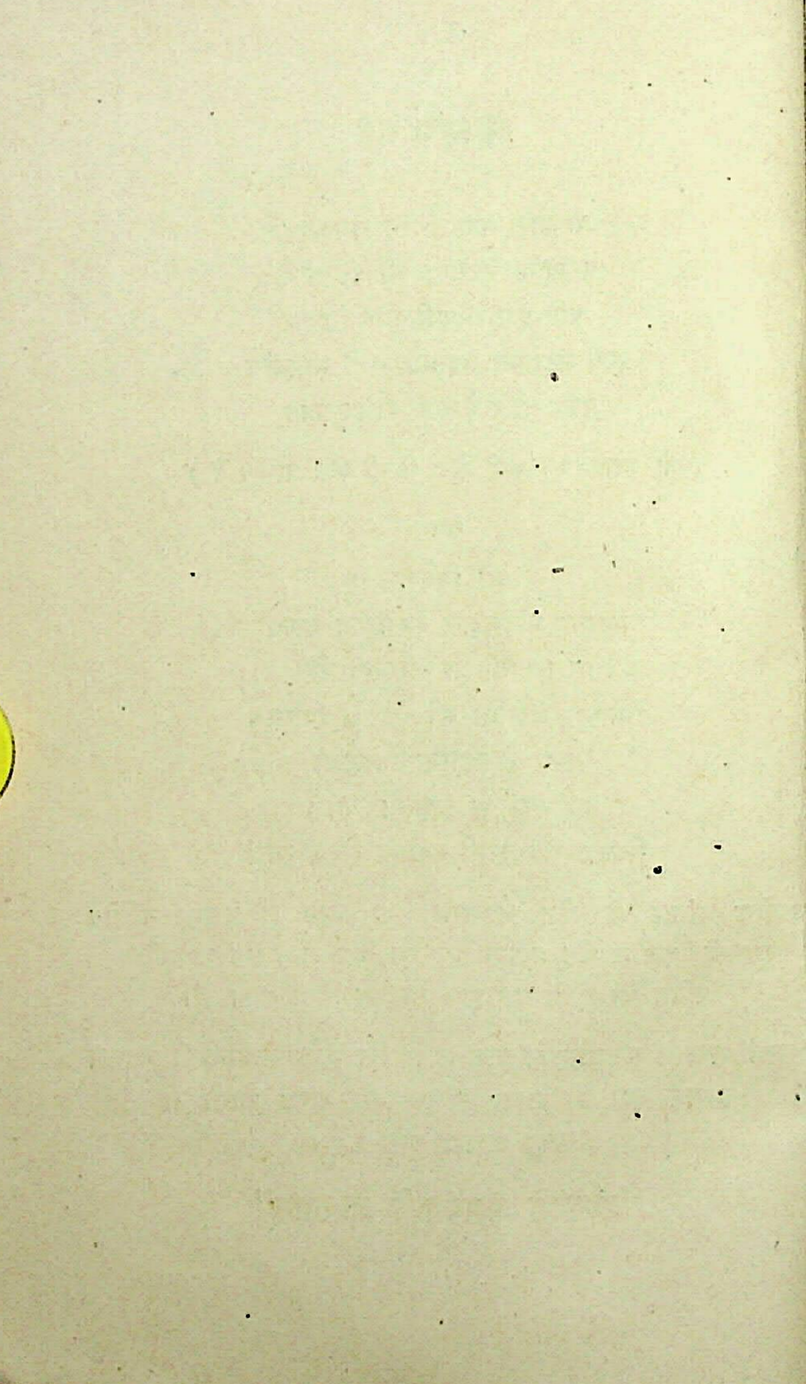
तथा

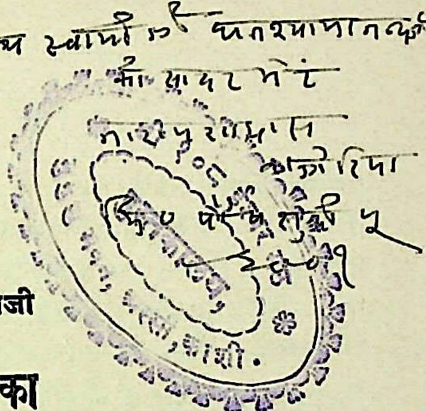
स्वामी विवेकानन्द
महात्मा मोहनदास करमचन्द गान्धी
परम योगी श्री अरविन्द घोष
दीनबन्धु महात्मा सी० एफ० एण्ड्रयूज
रूस के महात्मा टालस्टाय
अमेरिका के महात्मा एमर्सन
स्विटजरलैण्डवासी महात्मा रोम्या रोलां

उपरोक्त संसार के श्रेष्ठ महापुरुष, जो जन्म से ब्राह्मण न होते हुए भी, कर्म से श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। इन तथा अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों के पवित्र चरणों में यह पुष्प समर्पित किया जाता है।

'सत्य' स्वरूप भगवान् से प्रार्थना है कि ऐसे सत्यान्वेषी ब्राह्मण हमारे देश में तथा संसार के अन्य भागों में सदा उत्पन्न होते रहें।

"ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्"





ॐ

श्रीरामजी

भूमिका

एक समय था जब चक्रवर्ती सम्राट् दशरथजी ब्राह्मण विश्वामित्रजी के आने पर कितना सत्कार करते थे, तथा अपना सर्वस्व भी उन्हें अर्पण करने में अहो-भाग्य मानते थे। सम्राट् जनकजी की सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य जब आते थे तो उनका कितना सम्मान होता था। उस समय की बात है जब महर्षि विश्वा-मित्रजी क्षत्रिय महाराजा थे, ब्रह्मर्षि नहीं बने थे, तो उन्होंने लोभवश वशिष्ठजी की कामधेनु हरण कर ली थी और उसको अपने क्षत्रियबल अर्थात् पाशविक बल के भरोसे उसे वापस देने से इनकार कर दिया था। उस पर महात्मा वशिष्ठजी ने अपने ब्रह्मबल से पशुबल का सामना करने के लिये म्लेच्छों की सेना प्रगट की और विश्वामित्र को हराकर अपनी कामधेनु वापिस ले ली। महर्षि वशिष्ठ के ब्रह्मबल को देखकर विश्वामित्रजी के मुख से ये शब्द निकल पड़े "धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलं" और वे अपने राजपाट को छोड़कर तपस्या करने चले गये। उन्होंने तबतक विश्राम नहीं लिया जबतक ब्रह्मर्षि पद नहीं प्राप्त कर लिया। इस प्रकार क्षत्रिय से ब्राह्मण बन गये। पहले ब्राह्मणों में जो बल था वह ब्रह्मबल या 'सत्यबल' था जिसके सामने सबको नतमस्तक होना पड़ता था, चाहे कितना भी तेजस्वी क्षत्रिय क्यों न हो। पातञ्जल योगसूत्र में आया है "सत्यप्रतिष्ठायां क्रिया-फलाश्रयत्वम्" सर्वदा सत्यवाणी बोलने से, सत्य आचरण करने से मनुष्य की वाणी में अमोघ शक्ति आ जाती है, जो कुछ उसके मुख से निकल जाता है वही हो जाता है। यही सत्य का बल प्राचीन ब्राह्मणों का भूषण था। वही उनकी अमोघ शक्ति थी। ब्राह्मणों का जो दूसरा भूषण था वह क्षमा

बल था। कितना भी अपराध दूसरा करे तो भी वे क्षमा करने की शक्ति रखते थे। विश्वामित्रजी ने वशिष्ठजी के सौ पुत्रों की हत्यातक कर दी पर उनको क्रोध नहीं आया। अतएव क्षमाबल ब्राह्मणों का दूसरा बल था। उनका विश्वास था कि जो कुछ सुख, दुःख, लाभ-हानि होती है वह अपने ही इस जन्म तथा पूर्व जन्म के कर्मों का फल है।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता, परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
स्वयं कृते स्वेन फलेन युज्यते, शरीर हे निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥

सुख दुःख का दाता दूसरा कोई भी नहीं है, दूसरा (सुख दुःख) देता है यह केवल कुबुद्धि (मिथ्या ज्ञान है) जो अपने आप किया है वह उसी फल को भोगता है। हे शरीर, जो तुमने किया सो फल भोग।

गरुड़पुराण।

इसी बात को महात्मा तुलसीदासजी रामचरितमानस में वर्णन करते हैं। जिस समय भगवान् रामचन्द्रजी को वृक्ष के नीचे कुशशय्या पर शयन करते हुये देखकर निषादराज माता कैकैयी को बहुत से दुर्वचन कहता है; उस पर लक्ष्मणजी कहते हैं—

बोले लषन मधुर प्रिय बानी, ज्ञान विराग भगति रस सानी।
काहु न कोउ सुख दुःख कर दाता, निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥

अयोध्याकाण्ड

जिसके द्वारा या निमित्त से हानि,लाभ,सुख दुःख होता है,वह केवल निमित्त मात्र है, अतएव जो अपने कर्मों से ही हो उसके लिए दूसरे को दोषी या अपराधी ठहराना भूल है। अतएव वे सदा सब प्राणियों पर, हिंसक प्राणियों व्याघ्र आदि पर भी,समभाव रखते थे। उनसे न तो डरते थे न द्वेष रखते थे। इन दोनों बलों को महात्मा गान्धी ने अपना अमोघ-बल मान रखा है। इस बल के सामने दूसरा बल चाहे कितना भी प्रचण्ड हो कभी नहीं टिक सकता। एक दिन रोमराज्य के राज्यदूत ने यहूदियों के पुजारियों के बहकाने में

आकर महात्मा ईसा को सूली दी थी; तथा चोर डकैतों के बीच में उन्हें फाँसी पर लटकाया। महात्मा ईसा ने फांसी पर लटकते समय भगवान् से प्रार्थना की थी, "हे परमपिता जी, इनको क्षमा करना; क्योंकि ये क्या (अनर्थ) कर रहे हैं, यह नहीं जानते।" "Father, Forgive them for they know not what they do." New-Testament Bible जैसे अनजान बालक या मतवाला आदमी कोई गुरुतर अपराध भी कर दे, तो जिस प्रकार हमें विचार करने पर उन्हें क्षमा ही करनी पड़ती है, उसी तरह महात्मा लोग दूसरे के भीषण से भीषण अपराध को भी अज्ञान या मूर्खतासे होने के कारण क्षमा कर दिया करते हैं।

आज महात्मा ईसा को माननेवाले संसार में पचास कोटि से अधिक हैं, और उस रोम-राज्य का नामोनिशान भी न रहा जिसने कि उन्हें सूली पर टांगा था। इसी को महात्मा गान्धीजी अपना अहिंसा रूपी महान् बल कहते हैं। आज यह बल ब्राह्मण कहलानेवाले कितने भाइयों में है? अतएव जहाँ ब्राह्मण वंश में केवल जन्म को ही ब्राह्मणत्व का कारण माना जाता है, चाहे आचरण हो या नहीं, वहाँ यथार्थ में सच्चे ब्राह्मणत्व का लोप हो जाता है; केवल दम्भ, पाखण्ड की सृष्टि होती है; अतएव श्रीमद्भगवद्गीता कहती है—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

जो यथार्थ में ब्राह्मण हैं, उनमें उपरोक्त गुण स्वभाव से ही होंगे।

अन्यथा युधिष्ठिर-नहुष, तथा यक्ष के सम्वाद (देखो पृष्ठ संख्या ७) के अनुसार उनमें वर्णसंकरता का दोष विद्यमान है। यथार्थ में वे ब्राह्मण, सच्चे ब्राह्मणमाता-पिता से उत्पन्न नहीं हैं। "छान्दोग्योपनिषद्" में सत्यकाम की जो कथा वर्णित है, वह इस विषय में बड़ी ही स्पष्ट है—

"सत्यकामो ह जावालो जबालां मातरम् आमन्त्रयाञ्चक्रे, ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि, किं गोत्रो अहम् अस्मि ? इति ॥ १ ॥

सा ह एनम् उवाच—न अहम् एतद् वेद तात, यद्गोत्रः त्वम् असि। बहु अहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वाम् अलभे, सा अहम् एतद् न वेद यद्गोत्रः

त्वम् असि। जबाला तु नाम अहम् अस्मि, सत्यकामो नाम त्वम् असि; स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुव्रीथाः इति ॥ २ ॥

स ह हारिद्रुमतं गौतमम् एत्य उवाच—ब्रह्मचर्यं भगवति विवत्स्यामि, उपेयां भगवन्तम् इति ॥ ३ ॥

तं ह उवाच—किंगोत्रो नु सोम्य असि इति ? स ह उवाच, न अहम् एतद् वेद भो, यद्गोत्रोऽहम् अस्मि। अपृच्छं मातरम्, सा मा प्रत्यब्रवीत्, बहु अहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वाम् अलभे, सा अहम् एतद् न वेद, यद्गोत्रः त्वम् असि। जबाला तु नाम अहम् अस्मि, सत्यकामो नाम त्वम् असि इति। सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥ ४ ॥

तं ह उवाच—न एतद् अब्राह्मणो विवक्तुम् अर्हति, समिधं सोम्य आहर, उप त्वा नेष्ये, न सत्याद् अगाः इति। तम् उपनीय ह उवाच वस भो ब्रह्मचर्यम् इति ॥ ५ ॥

छान्दोग्योपनिषद्

एक दासी अपने यौवन काल में अनेक स्थानों में दासीका काम करती थी। उसको एक पुत्र हुआ, जब वह पुत्र कुछ बड़ा हुआ तो उसकी इच्छा गुरु के पास रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये विद्याध्ययन की हुई। अतएव उसने अपनी माता से पूछा "माँ मेरा क्या गोत्र हैं" ? मा थी तो दासी तथा "पतिता" पर सत्यभाषिणी थी। उसने स्पष्ट कह दिया "हे पुत्र मैं यह नहीं जानती कि तू किस गोत्रवाला है; दासी की नाईं बहुतों की परिचर्या (सेवा) करती हुई, मैंने तुझे यौवन अवस्था में पाया है मैं नहीं जानती, किस गोत्र-वाला तू है; जबाला नाम तो मैं हूँ, सत्यकाम नामवाला तू है, वह तू सत्य-काम जाबाल है, ऐसा ही आचार्य से जाकर कहो।" वह सत्यकाम प्रसिद्ध हरि द्रुमत के पुत्र गोतम के पास जाकर बोला, "मैं भगवान् के पास ब्रह्मचर्य से वास करना चाहता हूँ, क्या आप भगवान् के पास आजाऊँ।" गुरु ने पूछा कि "प्रिय तू किस गोत्रवाला है" तब उस सत्यकाम ने माता से सुनी हुई उप-

ोक्त बातें आर्य गौतम से ज्यों की त्यों सुना दी; यह सुनकर महर्षि गौतम बोले– 'ऐसी बात ब्राह्मणेतर कोई न कहेगा "तू ब्राह्मण है" क्योंकि तूने बिना छल कपट के इतनी जुगुप्सित बात भी कह डाली। अतएव तू समिधा लेआ, मैं तुझे दीक्षा दूँगा। तूने 'सत्य' को नहीं छोड़ा ; अतएव तू ब्राह्मण ही है।"

सो प्राचीन समय में व्यभिचारिणी दासी का पुत्र भी अपने सत्य भाषण के प्रभाव से ब्राह्मण मान लिया गया। अतएव "सत्य" महान् बल है; इसके सदृश दूसरा बल त्रिलोक में भी नहीं है। महात्मा लोग मन, वचन, कर्म से कभी भी सत्य से नहीं डिगते थे। ऋग्वेद के अघमर्षण (पापनाशक) सूक्त में आया है 'ऋतं च सत्यं चाभिद्धात्तपसोऽध्यजायत" अर्थात् कर्मफल दाता 'सत्य' स्वरूपी ब्रह्म ही पहिले था, उसने 'संकल्प रूपी' तप किया तो नाम-रूपमय सृष्टि हुई; अतएव सत्य ही ईश्वर या ब्रह्म है।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में श्रीकृष्णस्तुति इस श्लोक से की गई है।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यं ऋत-सत्य-नेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥ श्रीमद्भागवत (द०स्क०)

सत्य ही आपका व्रत अर्थात् नियम है, सदा आप सत्य पर आरूढ़ रहते हैं, तीनों काल में अर्थात् भूत, वर्तमान, भविष्य में आप सत्यस्वरूप ही हैं, सत्य ही आपका कारण है, सत्य में ही आप छिपे रहते हैं, सत्य के भी आप सत्य हैं, ऋत (मानसिक सत्य) तथा सत्य (वाचिक सत्य) आपके नेत्र हैं, ऐसे सत्यमय आपकी मैं शरण आया हूँ" अतएव सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में सत्य और अहिंसा ही हमारे ब्राह्मणों का प्रधान आभूषण था; आज तो जिसके गले में यज्ञोपवीत है, वही ब्राह्मण है; चाहे वे झूठ ही व्यवहार क्यों न करते हों। आज न मन के निग्रह से, न शम से, न इन्द्रिय-निग्रह से, न दम से, न तप से, न आन्तरिक

अविश्रता से, न बाह्य शौच से, न क्षमा से, न सरलता से, न ईश्वर पर विश्वा से, न ज्ञानसे, न विज्ञान से, ब्राह्मण माना जाता है। आज तो कोई भी कह कि मैं ब्राह्मण हूँ, चाहे जो भी कुछ करता हो, चाहे रसोईदारी करे या पल्लेदा करे या और कोई नीच कर्म करे, वही ब्राह्मण हो जाता है। अतएव जब कर्म ब्राह्मण नहीं होता, तो केवल जन्म से ब्राह्मण कैसे हो सकता है? निश्चय उसके माता पिता के रक्त में वर्णसंकरता का दोष आया है। आम वृक्षमें क इमली नहीं लगती। आम के वृक्ष में तो आम ही लगता है। अतएव आ न लगे, इमली लगे तो कोई भी आम के वृक्ष को आम वृक्ष नहीं कहेगा अतः जिसमें ब्राह्मण के विशिष्ट गुण न हों, वह वर्णसङ्कर है।

अतएव वेदवित् व सत्यभाषो अहिंसा गुणसम्पन्न मनुष्य ही ब्राह्मण है; बृहदारण्यक उपनिषद् में भी आया है—

बृहदारण्यक उपनिषद्—एक समय प्रसिद्ध राजा जनक ने महान् य किया जिसमें बहुत दक्षिणा दी गई थी। उसमें कुरु पाञ्चाल के बहुत ब्राह्म बुलाये गये। जनकजी सहस्र गौवों को, जिनकी सींघें स्वर्ण से आवेष्टित थीं मंगवाकर खड़ी कर दीं और घोषणा कर दी कि जो श्रेष्ठतम ब्राह्मण हो वह स गौवों को ले जाय, तब प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य ने अपने ब्रह्मचारी को आज्ञा दी कि "हे सौम्य सामश्रवा, इन गौवों को ले जा"; जनकजी का होता अश्वल ने याज्ञ वल्क्य से पूछा कि "क्या आप हम में सब से श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता है"? तो याज्ञ वल्क्य ने उत्तर दिया कि "हम सबसे बढ़कर ब्रह्मवेत्ता को नमस्कार करते हैं हम तो केवल गौवों की इच्छावाले हैं।" उनको इस प्रकार से अपने को ब्रह्मिष्ठ स्वीकार कर लेने पर हर एक ने पूछने का साहस किया। अब इस याज्ञवल्क्य से आर्तभाग ने पूछा कि "जब इस मरे हुये पुरुष की वाणी अग्नि में लीन हो जाती है, प्राण वायु में, नेत्र सूर्य में, मन चन्द्रमा में, रोम औषधियों में, तब यह पुरुष कहाँ होता है?"

आहर सौम्य, हस्तम् आर्तभाग! आवाम् एव एतस्य वेदयिष्याव: न नौ एतत् सजने इति। तौ ह उत्क्रम्य मन्त्रयांचक्राते। तौ ह यद्

ऊचतुः, कर्म ह एव तद् ऊचतुः। अथ यत् प्रशशंसतुः, कर्म ह एव तत् प्रशशंसतुः। पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति, पापः पापेन इति ॥

अर्थ—हे सौम्य , हे आर्त भाग , लाओ हाथ, हम दोनों ही इसको जानेंगे हम दोनों इसको सजन स्थान में (जहाँ सब लोग बैठे हैं वहाँ) न विचार सकेंगे; यह याज्ञवल्क्य ने कहा। वे दोनों ही निकलकर निर्जन स्थान में विचारने लगे। उन दोनों ने निश्चय विचार कर जो कुछ कहा वह निःसन्देह कर्म ही कहा और जिसकी प्रशंसा की, निःसन्देह उस कर्म की ही प्रशंसा की। पुण्यात्मा (अच्छे शरीरवाला) निश्चय पुण्य कर्म से होता है और पापात्मा (बुरे शरीरवाला) पाप कर्मसे होता है यह कहा।

तद् ये इह रमणीयचरणाः अभ्याशो ह यत् ते रमणीयां योनिं
आपद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा, क्षत्रिययोनिं वा, वैश्ययोनिं वा।
अथ ये इह कपूयचरणाःअभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिम्
आपद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥

अर्थ—वे जो यहाँ अच्छे कर्मों (पुण्य कर्मों) वाले हैं, वे शीघ्र ही जो अच्छी योनि (उत्तम जन्म) है, उसको प्राप्त होते हैं ; कदाचित् ब्राह्मणयोनि को, कदाचित् क्षत्रिययोनि को, कदाचित् वैश्ययोनि को। और जो यहाँ बुरे (पाप) कर्मोंवाले हैं, शीघ्र ही जो बुरी योनि है, उस को प्राप्त होते हैं; कदाचित् कुत्ते की योनि को, कदाचित् शूकरयोनि को, कदाचित् चाण्डाल, की योनि को।

अतः उपरोक्त कथन से सिद्ध हुआ कि कर्म से ही नीच योनियों में तथा मनुष्य योनि में भी, अच्छे बुरे कुलों में भी कर्म के अनुसार ही जन्म होता है। अतएव कर्म ही प्रधान है।

दूसरी जगह इसी उपनिषद् में आया है।

यो वा एतद् अक्षरं गार्गि,अविदित्वा अस्मिन् लोके जुहोति,यजते,तपः तप्यते, बहूनि वर्षसहस्राणि, अन्तवद् एव तस्य तद्भवति; यो वा एतद् अक्षरं गार्गि,

आवदित्वा अस्मात् लोकात् प्रैति, स कृपणः; अथ य एतद् अक्षरं गार्गि, विदित्व अस्माद् लोकात् प्रैति, स ब्राह्मणः।

अर्थ—हे गार्गि, जो मनुष्य निश्चय इस अक्षर को न जान कर इस लोक में होम करता है, यज्ञ करता है, तप तपता है, बहुत वर्ष चाहे हजारों वर्ष तक निःसन्देह वह सब (होम यज्ञ तप) उसका अन्तवाला 'विनाशी' फलवाला होता है। हे गार्गि, जो निश्चय इस अक्षर को न जानकर इस लोक से जाता है (मर जाता है) वह दया का पात्र (दीन-दुखिया) है; और जो इस अक्षर को जानकर इस लोक से जाता है। "वही ब्राह्मण, है।" इसी उपनिषद् में तीसरे स्थान में आया है—"यथाकारी यथाचारी तथा भवति, स साधुकारी साधु भवति, पापकारी पापो भवति। पुण्यं पुण्येन कर्मणा भवति, पापं पापेन"

जो जैसा करता है वैसा ही हो जाता है ; साधु कार्य करनेवाला साधु हो जाता है, पाप करनेवाला पापी। पुण्य कर्म से पुण्यात्मा और पाप से पापी होता है।

श्रीमद्भागवत में प्रह्लादजी कहते हैं—

विप्राद् द्विषड् गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं ; न तु भूरिमानः॥

(७ स्कन्ध ९ अध्याय १० वाँ श्लोक

अर्थ—जो ब्राह्मण, बारह गुणों से युक्त है, किन्तु भगवान् कमलनाभ के चरण कमलों से विमुख है, उससे मैं उस चाण्डाल को श्रेष्ठ समझता हूँ जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन, और प्राण को श्रीहरि ही में लगा रखा है; वह अपने कुल को पवित्र कर देता है ; किन्तु अपने बड़प्पन का विशेष गर्व रखनेवाला ब्राह्मण वैसा नहीं कर सकता।

आज चमार वंश में उत्पन्न रैदास के भजन तो प्रेम से गाये जाते हैं, इसी बीच में केवल नामधारी ब्राह्मण न मालूम कितने हो गये, उनको कोई जानता भी नहीं; तात्पर्य यह है कि कर्म और गुण ही प्रधान है। अच्छे कुल में जन्म मिलना अच्छा है, यह पूर्व जन्म के पुण्य से ही मिलता है; किन्तु यदि आचरण न हो तो उच्च कुल में जन्म लेना निरर्थक ही नहीं, वल्कि कलङ्करूप हो जाता है। जैसे कोई करोड़पति के घर में जन्म लेकर यदि अपने कर्मवश दरिद्र हो जाय तो उसे कोई करोड़पति नहीं कहेगा। यदि कोई गरीव के घर में जन्म लेकर भी अपने वुद्धिवल से करोड़पति हो जाय तो फिर उसे सब करोड़पति ही कहेंगे; कोई उसे दरिद्र न कहेगा। करोड़पति के पुत्र का गरीब हो जाना जैसे उसके लिये अपमान कारक होगा; तथा कङ्गाल का करोड़पति होना उसके लिये सम्मान का ही कारण होगा। इसी प्रकार ब्राह्मण होकर सत्य, क्षमा, आदि सद्गुणों से रहित होना बहुत ही कलंक की बात है; उसी प्रकार नीच कुल में उत्पन्न होकर सद्गुणसम्पन्न होना गौरव की बात है। फिर प्रश्न होता है कि जन्म से वर्णव्यवस्था हुई क्यों? ऋषि तो मन्त्रद्रष्टा थे; यह प्रथा चली क्यों? इसका कारण वही है जिसे आज (Law of Heredity) वंश की श्रेष्ठता कहते हैं। आज गौ, घोड़े के वंश की (Pedigree) भी रक्षा की जाती है, मनुष्यों की तो बात ही क्या। अच्छे साँड़ से गर्भ धारण करने के लिये योरोप में एक एक गौ के लिये १०० पौंड अर्थात् १३००) रुपये खर्चे जाते हैं; जिससे कि उत्तम वृषभ (सांड) के वीर्य से अच्छी गौ या अच्छा साँड़ उत्पन्न हो। किन्तु जिस प्रकार अच्छे सांड़ से तथा अच्छी दुग्धवती गौ की सन्तान होते हुए भी कोई गौ दुग्धवती न हो तो उसका फिर आदर नहीं होता; इसी प्रकार मनुष्यों की बात है। हमारी जन्म से जो वर्णव्यवस्था थी, वह बहुत ही वैज्ञानिक थी; उसको ठीक रखने के लिये स्मृतियों में ब्राह्मण आदि वर्णों को दण्ड का विधान है जैसे—

नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ मनुस्मृतिः

"अर्थ—जो प्रातःकाल को (यानी पूर्व मुख कर) तथा सायंकाल को (यानी पश्चिम की ओर मुखकर) ईश्वर-ब्रह्मविचार नहीं करता, उसका शूद्र, तुल्य ब्राह्मणोचित कर्मों से बहिष्कार कर देना चाहिये।"

जब तक इस प्रकार आचार रहा. उस वक्त तक ब्राह्मणों में यथा में तेज रहा। जैसे २ उनके दुष्कार्यों से उनका तेज घटता गया, तब पाखण्ड और दम्भ का प्रारम्भ हुआ। उनके विरोध में विष्णु के नवम अवतार भगवान बु को तीव्र प्रतिकार करना पड़ा। वे कहते हैं कि—

न जटाहि न. गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यह्मि सच्चं च धम्मो च, सो सुची सो च ब्राह्मणो॥

न जटा से, न गोत्र से, न जाति से ब्राह्मण होता है; जिसमें सत्य है औ धर्म है, वही सुचि वा पवित्र है, वही ब्राह्मण है।

"धम्मपद"

वर्ण-व्यवस्था (वासेट्ठ सुत्तंत २।५।८)

एक समय जब भगवान् बुद्ध वनखण्ड में विहार कर रहे थे; वसिष्ठ औ भारद्वाज नाम के दो ब्राह्मण वर्णव्यवस्था पर वादविवाद करते भगवान् के पा पहुँचे। भारद्वाज बोला—जाति से ब्राह्मण होता है या कर्म से? भगवान् बुद्ध बोले—सुनो मैं क्रमशः कहता हूँ—

प्राणियों की जातियों में एक दूसरे से जाति का भेद है। तृण और वृक्ष भी जानते हो (इसके लिये वह प्रतिज्ञा नहीं करते) जाति का लिङ्ग है? उन जातियाँ एक दूसरे से भिन्न हैं। फिर कीट, पतङ्ग से चींटी तक जाति का लिङ्ग है लम्बी पीठवाले पादों पर (जिसका उदर ही पैर का काम करे) साँप क भी जानते हो?

फिर आकाशचारी पत्रयान (पक्षियों) को भी जानते हो? जैसे इन जातियों में जाति का अलग-अलग लिङ्ग है, इस प्रकार की जाति-लिङ्ग मनुष्यों में अलग-अलग नह है। न केशों में, न सिर में, न कान में, न आँख में, न मुख में, न

ासिका में, न ओठ में, न भौं में, न ग्रीवा में, न कन्धे में, न पीठ में, न पेट ं, न श्रेणी में, न उर में, न गोप्यस्थान में, न मैथुन में, न हाथ में, न पैर में, उँगली में, न नख में, न जंघा में, न ऊरु में, न वण या स्वर में, जैसा कि ान्य जातियों में जाति का कोई पृथक् लिङ्ग नहीं है। मनुष्यों के शरीर पर यह ेदक लिङ्ग नहीं मिलता। मनुष्यों में भेद सिर्फ संज्ञा में है।

प्राचीन ब्राह्मण कैसे थे उनका पतन कैसे हुआ ?–

एक समय जब भगवान् श्रावस्ती के अनाथपिंडक के जेतवन विहार में अपने िष्यों समेत विराजमान थे, कौशल देश के कुछ सम्पन्न अतिवृद्ध ब्राह्मण लोग हाँ उपस्थित हुए, और नियमपूर्वक शिष्टाचार के साथ बैठे तथा कुछ धर्मचर्चा रने के बाद उन लोगों ने अतिनम्रतापूर्वक भगवान् से प्रश्न किया कि "हे गवन् ! वर्तमान समय में ब्राह्मणों का जैसा आचार-विचार है; क्या प्राचीनकाल े भी ब्राह्मणों का आचार-विचार ऐसा ही था ?

भगवान् ने कहा—नहीं वर्तमान समय के ब्राह्मणों के आचार विचार की रह प्राचीन समय के ब्राह्मणों का आचार विचार नहीं था।

वृद्ध ब्राह्मण ने भगवान् से प्रार्थना की "हे भगवन्, तो फिर प्राचीन समय े ब्राह्मणों के आचार कैसे थे ? उसे आप कृपा करके सविस्तार कहिये—

इस तरह ब्राह्मणों के वचन सुनकर भगवान् बोले कि प्राचीन ऋषि ब्राह्मण ोग संयतात्मा और तपस्वी होते थे, वे लोग पाँचो-काम इन्द्रियों के सुख को ोड़कर आत्मकल्याण में निरत रहते थे। उन ब्राह्मणों के पास पशु सोना ान्यादि द्रव्य बहुत नहीं होते थे। स्वाध्याय करना ही उनका धन-धान्य था; े मित्रता, करुणा, मुदिता, उपेक्षा,वृत्तिरूपी ब्रह्मविहार में, धारणामें निरत, रहा रते थे। गृहस्थ लोग जो भोजन बनाकर द्वार पर अभ्यागत ब्राह्मण को श्रद्धा ूर्वक दान करते थे, उसी को ग्रहण करके वे अपना निर्वाह करते थे; उनके ामने देश के सभी प्रान्तों से धनीमानी सज्जन आकर मस्तक नवाते थे। वे ्राह्मण अवध्य, अजेय और धर्म से रक्षित होते थे, और उनको कोई भी अपने रवाजे पर खड़े होने से नहीं रोकता था। पहले ब्राह्मण ३५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का

पालन करके विद्या और आचार के अन्वेषण में लगे रहते थे, वे ब्राह्मण प
गामी नहीं होते थे, और न कभी स्त्रीक्रय करते थे; वे ब्राह्म-विधिना विवाह
दाम्पत्य जीवन का सुख भोगते थे; वे ब्राह्मण स्वकीया भार्या के साथ
विना "ऋतु" के, जो रजोदर्शन के बाद होता है, कभी मैथुन कर्म नहीं
थे। वे ब्रह्मचर्यशील एवं सौजन्य व मृदुता तथा सहानुभूत्यात्मक प्रवृत्ति
सहनशीलता की शिक्षा देते थे; और ब्रह्मचर्य क्षमा एवं शील की सदा प्र
किया करते थे। वे ब्राह्मण घृत लवणइन्धन तैल चावल आदि धर्मपूर्वक मां
कर संग्रह करते थे; और उसीसे अपना यज्ञ-कार्यसम्पादन किया करते
यज्ञ में कभी गौ नहीं मारते थे। माता पिता भाई आदि अन्य सम्बन्धियों
तरह गौ भी हमारी परम मित्र है; उसमें औषधियाँ पैदा होती हैं, ये गायें
वस्त्र एवं सौन्दर्योपधायक हैं, व सुखदायिनी हैं। इन्हीं बातों को जान
वे ब्राह्मण, गौओं का वध नहीं करते थे। वे ब्राह्मण लोग हृष्ट मन, विश
काय सुन्दर यशस्वी धर्मपरायण और अपने सब प्रकार के कर्तव्यों के पा
में सदा उत्सुक रहते थे। जब तक ब्राह्मणों के ऐसे अच्छे आचरण थे त
तक वे मेधासम्पन्न एवं सुखी थे और प्रजा भी सुखी थी।"

इस पुस्तिका के श्लोकों तथा उनके अर्थों का शोधन करने में काशी-विद्या
के पूज्य पण्डित इन्दिरा-रमणजी ने बहुत परिश्रम किया है, उनके परिश्रम से
यह पुस्तिका छप सकी है; अतः मैं उनका ऋणी हूँ। इस छोटीसी पुस्तिका
हमारे पूज्य ब्राह्मण भाइयों तथा अन्य भाइयों में कुछ भी वास्तविक धर्म
ज्ञान हुआ तो मेरा प्रयास विफल न होगा। इस पुस्तिका में अगर कुछ त्रुटि
तो विद्वद्वृन्द लिखने की कृपा करेंगे; जिससे यदि दूसरा संस्करण हुआ,
सुधार कर दिया जायगा।

११७ हरिसन रोड
कलकत्ता
मि० आश्विन-सुदी
१० सं० २००१ विक्रम

विनीत प्रार्थी
नारायणदास बाजोरिय

हरिः ॐ तत्सत्

अथ वज्रसूचिकोपनिषत्

यज्ज्ञानाद्यान्ति मुनयो ब्राह्मण्यं परमाद्भुतम् ।
तत्रैपदब्रह्मतत्त्वमहमस्मीति चिन्तये ॥ १ ॥

जिसका ज्ञान हो जाने से मुनिजन परमाद्भुत ब्राह्मण-भाव को प्राप्त हो जाते हैं, वह भूर्भुवः सुवः आदि ब्रह्मतत्त्व-स्वरूप मैं ही हूँ; इस प्रकार चिन्तन करता हूँ ॥ १ ॥

ॐ अध्येता जन, श्रुति-स्मृत्यादिप्रतिपादित वृद्धि को प्राप्त हों।

चित्सदानन्दरूपाय सर्वधीवृत्तिसाक्षिणे ।
नमो वेदान्त-वेद्याय ब्रह्मणेऽनन्तरूपिणे ॥ २ ॥

जो ज्योतिः सत् तथा आनन्दस्वरूप है, और जो सबके बुद्धि-व्यापारों का साक्षी है, जिसको 'तत्त्वमसि' इत्यादि वेदान्त-वाक्यों से जाना जाता है, ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड स्वरूप ब्रह्म के लिये नमस्कार है ॥ २ ॥

ॐ वज्रसूचीं प्रवक्ष्यामि शास्त्रमज्ञानभेदनम् ।
दूषणं ज्ञानहीनानां भूषणं ज्ञानचक्षुषाम् ॥ १ ॥

ब्रह्म-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रा इति चत्वारो वर्णास्तेषां वर्णानां ब्राह्मण एव प्रधान इति वेदवचनानुरूपं स्मृतिभिरप्युक्तम् । तत्र

चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम ? किं जीवः, किं देहः, किं जातिः, किं ज्ञानं, किं कर्म, किं धार्मिक इति ?

तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत् ? तन्न; अतीतानागतानेकदेहानां जीवस्यैकरूपत्वाद् एकस्यापि कर्मवशादनेकदेहसंभवात् सर्वशरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च। तस्मान्न जीवो ब्राह्मण इति ॥ ३ ॥

अज्ञानियों के लिये कलङ्कस्वरूप, और प्रज्ञास्वरूप नेत्र वालों के लिये जो ज्ञानाञ्जन है, ऐसे अज्ञान को भेदन करने वाले 'वज्रसूची' नामक उपनिषत्-शास्त्र को कहता हूँ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। इन चारों में ब्राह्मण ही प्रधान है। यह वेद-वचनों के अनुसार तथा स्मृतियों में भी कहा है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि 'ब्राह्मण' कौन है ? ब्राह्मण किसको कहते हैं ?

क्या जीव, देह, जाति, ज्ञान, कर्म, तथा धार्मिकत्व इनमें से किसी को ब्राह्मण कहते हैं ? यदि हाँ, तो क्या जीव ब्राह्मण है ? यदि कहो हाँ, तो धोखे में हो, क्योंकि बीती हुई तथा आनेवाली अनेक देहों में जीव तो एक ही रहता है; किये हुये कर्मों के वश से एक जीव के भी शूकर, कूकर, कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी मनुष्य आदि भिन्न-भिन्न शरीर बनते हैं। यदि जीव ही ब्राह्मण होता, तो उसको शूकरादि शरीर में भी ब्राह्मण ही कहना चाहिये ; किन्तु ऐसा कहीं नहीं देखा गया है। इसलिये 'जीव' ब्राह्मण नहीं है ॥ ३ ॥

तर्हि देहो ब्राह्मण इति चेत् ? तन्न;

आचाण्डालादिपर्यन्तानां मनुष्याणां पाञ्चभौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वाज्जरामरणधर्माधर्मादिसाम्यदर्शनाद्ब्राह्मणः श्वेतवर्णः

क्षत्रियो रक्तवर्णो वैश्यः पीतवर्णः शूद्रः कृष्णवर्ण इति नियमाभावात् । पित्रादिशरीर-दहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्यादिदोषसंभवाच्च । तस्मान्न देहो ब्राह्मण इति ॥ ४ ॥

यदि कहो कि शरीर ब्राह्मण है, तो वह भी नहीं ; क्योंकि ब्राह्मण से लेकर चण्डाल तक का शरीर पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश प्रभृति पाँच तत्वों से बना हुआ है। इसलिये अखिल शरीरों का निर्माण सदृश वस्तुओं से ही हुआ है, उनमें भिन्नता नहीं हो सकती है। बाल, तरुण, वृद्ध और मरणादि-धर्म सब में एक से ही होते हैं। ब्राह्मण का श्वेतवर्ण क्षत्रिय का रक्तवर्ण वैश्य का पीतवर्ण शूद्र का काला रङ्ग इत्यादि कल्पित नियम का सर्वत्र व्यभिचार देखा जाता है। देह को ब्राह्मण मानने से जीव-रहित पितादिकों के शरीर को दहन करनेवाले पुत्रादि ब्रह्महत्या के दोषी बनेंगे। इसलिये शरीर भी ब्राह्मण नहीं माना जा सकता है ॥ ४ ॥

तर्हि जातिर्ब्राह्मण इतिचेत्? तन्न; तत्र जात्यन्तरजन्तुष्वनेकजातिसंभवा महर्षयो बहवः सन्ति । ऋष्यश्रृङ्गो मृग्याः, कौशिकः कुशात्, जाम्बूको जम्बूकात्, वाल्मीको वल्मीकात्, व्यासः कैवर्तकन्यकायाम्, शशपृष्ठाद् गौतमः, वशिष्ठ उर्वश्याम्, अगस्त्यः कलशे जात इति श्रुतत्वात्। एतेषां जात्या विनाऽप्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयो बहवः सन्ति । तस्मान्न जाति ब्राह्मण इति ॥ ५ ॥

यदि जाति को ब्राह्मण मानो, तो वह भी नहीं ; क्योंकि मृगादि जात्यन्तरों में उत्पन्न अनेक महर्षिजन ब्राह्मण देखे गये हैं, जैसे ऋष्यश्रृङ्ग मृगी से जन्मे, इसी प्रकार कौशिक कुशा से, जाम्बूक श्रृगाल से, वाल्मीक बल्मीक से, व्यास मल्लाह की कन्या से,गौतम शशक के पृष्ठ से, वशिष्ठ उर्वशी नाम की वेश्या से, अगस्त्य घड़े से ; ये लोग ब्राह्मण जाति

में उत्पन्न न होकर भी ज्ञानबल से ब्रह्मऋषि कहाये, इसलिये जाति भी ब्राह्मण नहीं हो सकती है।

तर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इति चेत् ? तन्न, क्षत्रियादयोऽपि परमार्थ-दर्शिनोऽभिज्ञा बहवः सन्ति। तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण इति ॥ ६ ॥

यदि कहो कि ज्ञान ब्राह्मण है, तो वह भी नहीं ; क्योंकि क्षत्रिय वैश्यादि भी अनेक परमार्थदर्शी ज्ञानी हैं। इसलिये ज्ञान भी ब्राह्मण नहीं है ॥ ६ ॥

तर्हि कर्म ब्राह्मण इति चेत् ? तन्न; सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्ध-सञ्चिताऽऽगामिकर्म-साधर्म्यदर्शनात्कर्माभिप्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः कुर्वन्तवीति; तस्मान्न कर्म ब्राह्मण इति ॥ ७ ॥

यदि कर्म को ब्राह्मण कहो, तो वह भी नहीं ; क्योंकि प्रत्येक प्राणी के प्रारब्ध सञ्चित तथा आगामी कर्मों में समानता देखी जाती है। कर्मों की प्रेरणा से लोग क्रिया करते हैं, इसलिये कर्म भी ब्राह्मण नहीं है ॥ ७ ॥

तर्हि धार्मिको ब्राह्मण इति चेत् ? तन्न; क्षत्रियादयो हिरण्यदातारो बहवः सन्ति; तस्मान्न धार्मिको ब्राह्मण इति।

तर्हि को वा ब्राह्मणो नाम ? यः कश्चिद् आत्मानमद्वितीयं जाति-गुण-क्रियाहीनं षडूर्मिषड्भावेत्यादि-सर्वदोषरहितं सत्य-ज्ञानानन्दानन्तस्वरूपं स्वयं निर्विकल्पमशेषकल्पाधारमशेषभूता-न्तर्यामित्वेन वर्तमानमन्तर्बहिश्चाकाशवदनुस्यूतमखण्डानन्द-स्वभावमप्रमेयमनुभवैकवेद्यमपरोक्षतया भासमानं करतलामल-कवत्साक्षादपरोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागादिदोषरहितः शमदमादिसम्पन्नो भाव-मात्सर्य-तृष्णाऽऽशामोहादि-रहितो दम्भाहंकारादिभिरसंस्पृष्टचेता वर्तत एवमुक्तलक्षणो यः स एव

ब्राह्मण इति; श्रुति-स्मृति-पुराणेतिहासानामभिप्रायः । अन्यथा हि ब्राह्मणत्वसिद्धिर्नास्त्येव । सच्चिदानन्दमात्मानमद्वितीयं ब्रह्म भावयेद्, आत्मानं सच्चिदानन्दं ब्रह्म भावयेदित्युपनिषत् । ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥ ८ ॥

तो धार्मिक ब्राह्मण होगा; यह भी नहीं, अनेक क्षत्रिय सुवर्ण के दान करनेवाले धार्मिक होते हैं। अतः धार्मिक भी ब्राह्मण नहीं है।

यदि इनमें से कोई भी ब्राह्मण नहीं ; तो ब्राह्मण कौन है ? इसका उत्तर देते हैं। जो सर्वशरीरादिगत आत्मा को एक ही माने ; तथा जाति गुण क्रिया से हीन, षड्ऊर्मि-षड्भाव आदि दोषों से रहित, सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप आनन्द तथा अनन्तस्वरूप, अपने आपमें भ्रान्तिरहित, गतिमान् वाराहादि कल्पों का आधार, सर्वज्ञ होकर निखिलभूत समुदाय में वर्तमान, बाहर भीतर आकाश की न्याईं व्याप्त, अटूट आनन्द स्वभाव, परिमाण रहित, अनुभव से ही जानने योग्य, प्रत्यक्ष की भाँति प्रतीयमान, हाथ में रखे हुये आमलों के जैसे आकार परिमाण रङ्ग रूप रेखा आदि जान लिये जाते हैं, वैसे ही पूर्वोक्त गुणों वाले आत्मा को साक्षात् जानकर, कृतार्थ हुआ, तथा काम, राग-द्वेषादि अवगुणोंसे रहित, शम, दम, दान आदि करके युक्त, कुसङ्ग, क्रोध, लोभ, आशा, मोह, आदि विकारों से हीन, और कुटिलता अभिमान आदि आसुर भावों से नहीं स्पर्श किया गया है मन जिसका, इस प्रकार का जो दृष्टि में आवे वही ब्राह्मण हो सकता है ॥ ८ ॥

यह वेद, स्मृति, पुराण, इतिहासादि धर्म प्रतिपादक शास्त्रों से प्रतिपादन किया गया है, इन उपरोक्त लक्षणों के विना ब्राह्मणत्व की सिद्धि हो ही नहीं सकती है। सच्चिदानन्द आत्मा को ब्रह्म से अतिरिक्त न समझे, ब्रह्म ही जाने ; यही उपनिषत् [वेद का रहस्य वा तत्त्व] है ॥

——

ब्राह्मण कैसा होता है ?

गीता का निर्णय

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म-विभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥

गी० अध्याय ४ श्लोक १३

गुण और कर्म के विभाग से मैंने ही चारों वर्णों को रचा है ; और उसका अविनाशी कर्त्ता भी मैं ही हूँ ; तथापि मुझको अकर्ता जानो ।

ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशां, शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥

हे अर्जुन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के कर्म, स्वभावज गुणों से प्रविभक्त हैं ॥ गीता—अ० १८ श्लोक ४१ ॥

शमो दमस्तपः शौचं, क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं-विज्ञानमास्तिक्यं, ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

चित्त की शान्ति, इन्द्रियों का जीतना, शरीर से तीन भाँति का तप, पवित्रता, क्षमा, सहज स्वभाव, शास्त्रज्ञान, तथा शास्त्र में अभ्रान्ति, शास्त्रविहित कर्म में श्रद्धा, ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं ।

गी० अ० १८ श्लोक ४२ ॥

शौर्यं, तेजो, धृतिर्दाक्ष्यं, युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च, क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

शूर-वीरता, तेजस्विता, धैर्य्य, चतुरता, युद्ध में स्थिरता, दान देना, उदारता, यह गुण क्षत्रिय के स्वभाव-सिद्ध हैं ।

गी० अ० १८ श्लोक ४३ ॥

कृषि-गोरक्ष्य-वाणिज्यं, वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म, शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥

खेती करना, गोपालन और व्यापार करना वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं ; ब्राह्मणादिक तीनों वर्णों की सेवा करना, शूद्र का स्वाभाविक कर्म है ।

गी० अ० १८ श्लोक ४४ ॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।

अपने अपने कर्म को करता हुआ ही मनुष्य सम्यक् सिद्धि को प्राप्त कर सकता है, नहीं तो च्युत हो जाता है ।

गी० अ० १८ श्लोक ४५ ॥

"ब्राह्मण कौन है ?"

मनुष्य, जन्म से या कर्म से ब्राह्मण होता है ? इस विषय में महाराज युधिष्ठिर तथा सर्पयोनि में आये हुये महाराज नहुष का प्रश्नोत्तर ।

[महाभारत वनपर्व अध्याय १८० श्लोक २० से ३७ तक]

सर्प उवाच

ब्राह्मणः को भवेद्राजन् , वेद्यं किं च युधिष्ठिर ।
ब्रवीह्यतिमतिं त्वां हि वाक्यैरनुमिमीमहे ॥

सर्प बोला—हे युधिष्ठिर, बातों से तो आप अलौकिक बुद्धिमान् मालूम पड़ते हैं । अतः आप प्रथम यह बताइये कि ब्राह्मण कौन है, और जानने योग्य वस्तु कौनसी है ?

युधिष्ठिर उवाच

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेंद्र, स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥

वेद्यं सर्प परं ब्रह्म निर्दुःखमसुखं च यत्।
यत्र गत्वा न शोचन्ति, भवतः किं विवक्षितम् ॥

महाराज युधिष्ठिर बोले--सत्य, दान, क्षमा, शील, आनृशंस्य, तप और दया आदि सद्गुण जिसमें हों वही ब्राह्मण है; और हे सर्प, जिसको जान लेने से मनुष्य शोकशून्य हो जाता है वह सुखदुःख से रहित परब्रह्म ही जानने योग्य वस्तु है।

सर्प उवाच

चातुर्वर्ण्यं प्रमाणं च सत्यं च ब्रह्म चैव हि।
शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च॥
आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिर।
वेद्यं यच्चात्र निर्दुःखमसुखं च नराधिप॥
ताभ्यां हीनं पदं चान्यन्न तदस्तीति लक्षये।

सर्प बोला—हे धर्मराज ! अभ्रान्त वेद चारों वर्णों का हित करता है। वह वेद जिनका प्रतिपादन करता है, ऐसे सत्य, दान, क्षमा, आनृशंस्य, अहिंसा, दया आदि सद्गुण शूद्र में भी देखे जाते हैं ; तो फिर ब्राह्मण और शूद्रों में विशेषता क्या रही ; और तुमने कहा है कि सुखदुःख से रहित तो कोई पदार्थ दिखाई ही नहीं देता ॥

युधिष्ठिर उवाच

शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प, वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः।
यत्रैतन्न भवेत् सर्प, तं शूद्रमिति निर्दिशेत्॥
यत्पुनर्भवता प्रोक्तं न वेद्यं विद्यतीति च।

ताभ्यां हीनमतोऽन्यत्र पदं नास्तीति चेदपि ॥
एवमेतन्मतं सर्प, ताभ्यां हीनं न विद्यते ।
यथा शीतोष्णयोर्मध्ये भवेन्नोष्णं न शीतता ॥
एवं वै सुखदुःखाभ्यां हीनं नास्ति पदं क्वचित् ।
एषा मम मतिः सर्प, यथा वा मन्यते भवान् ॥

महाराज युधिष्ठिर बोले—शूद्र में जो ब्राह्मण-लक्षण हों, वे यदि द्विज में नहीं हों तो न वह शूद्र शूद्र होता, और न वह ब्राह्मण ब्राह्मण ही होता है। जिसमें पूर्वोक्त सत्य आदि लक्षण हों वही ब्राह्मण है। जो इन लक्षणों से रहित हो वह शूद्र है। और तुमने यह कहा कि सुख-दुःख से रहित कोई वस्तु नहीं है; क्योंकि सुख और दुःख सर्वत्र दिखाई देते हैं। किन्तु जैसे शीत के भीतर गर्मी और उष्ण के अन्दर ठण्डक नहीं होती, वैसे ही सुख-दुःख से हीन वस्तु भी, जिसका अनुभव साधारणतः नहीं होता, नहीं है। तुम चाहे जो समझते हो, पर मैं यही समझता हूँ कि जैसे ठण्डक और गर्मी के अनुभव से परे किसी पदार्थ की सत्ता स्वीकार की जाती है, वैसे ही सुख-दुःखशून्य ज्ञेय पदार्थ का होना भी स्वीकार करना पड़ेगा।

सर्प उवाच

यदि ते वृत्ततो राजन् ब्राह्मणः प्रसमीक्षितः ।
वृथा जातिस्तदायुष्मन्, कृतिर्यावन्न विद्यते ॥

सर्प बोला—हे आयुष्मन् यदि वेदोक्त आचार से ही ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है तो फिर जब तक मनुष्य में उस आचार के पालने की शक्ति नहीं आती तब तक जाति-विभाग वृथा है।

युधिष्ठिर उवाच

जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते ।
संकरात्सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः ॥

सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः ।
वाङ्मैथुनमथो जन्म मरणं च समं नृणाम् ॥
इदमार्षं प्रमाणं च 'ये यजामह' इत्यपि ।
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं ये विदुस्तत्त्वदर्शिनः ॥
प्राङ्नाभिवर्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते ।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥
तावच्छूद्रसमो ह्येष यावद् वेदे न जायते ।
तस्मिन्नेवं मति द्वैधे मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥
कृतकृत्याः पुनर्वर्णा यदि वृत्तं न विद्यते ।
संकरस्त्वत्र नागेन्द्र, बलवान् प्रसमीक्षितः ॥
यत्रेदानीं महासर्प, संस्कृतं वृत्तमिष्यते ।
तं ब्राह्मणमहं पूर्वमुक्तवान् भुजगोत्तम ॥

महाराज युधिष्ठिर बोले—हे बुद्धिमन् सर्प ! जन्म मरण भाषा और मैथुन में सब मनुष्य समान हैं। सभी मनुष्य सभी प्रकार की स्त्रियों से सन्तान उत्पन्न किया करते हैं। इस कारण मेरे मत में सब वर्णों का आपस में मिश्रण होने के कारण जाति की परीक्षा होना अत्यन्त कठिन है। ऋषियों का कहना है कि यज्ञ करने वाले ही ब्राह्मण होते हैं। इसी कारण तत्त्वदर्शी लोगों ने चरित्र को ही प्रधान यज्ञ माना है। नाल काटने के पहिले मनुष्य का जातकर्म संस्कार किया जाता है; उस समय बालक की माता सावित्री और पिता आचार्य कहा जाता है। इसी जाति सम्बन्धी सन्देह के लिए स्वायंभुवमनु ने व्यवस्था दी है कि पुरुष जब तक वेद नहीं पढ़ता, गायत्री का उपदेश नहीं पाता तब तक शूद्र के समान होता है।

हे सर्प ! यदि विधिपूर्वक यज्ञोपवीत आदि संस्कार हो जाने पर भी मनुष्य वेद में कहे गये आचारों का पालन नहीं करता तो उसमें वर्ण संकर के भावों को प्रबल मानना चाहिये। इसी से मैं पहिले कह चुका

हूँ कि जो वेदोक्त आचारों से युक्त है, तथा जिसका चरित्र पूर्ण तरह से शुद्ध है, वही ब्राह्मण है।

इसी विषय में महाराज युधिष्ठिर तथा यक्ष का प्रश्नोत्तर भी इस प्रकार हुआ।

(महाभारत वनपर्व अध्याय ३१३ श्लोक १०७ से १११ तक)

यक्ष उवाच

राजन्, कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा।
ब्राह्मण्यं केन भवति; प्रब्रूह्येतत्सुनिश्चितम्॥

यक्ष बोला—हे राजन्! कुल चरित्र स्वाध्याय और श्रुत आदि में कौन सी बात ब्राह्मणत्व का कारण है?

युधिष्ठिर उवाच

शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः॥
वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥
पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पंडितः॥
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते।
योऽग्निहोत्रपरो दांतः स ब्राह्मण इति स्मृतः।

महाराज युधिष्ठिर बोले—कुल स्वाध्याय या श्रुत के ऊपर ब्राह्मणत्व निर्भर नहीं है। चरित्र ही ब्राह्मणत्व का कारण है। इसलिये ब्राह्मण को विशेष रूप से चरित्र की ही रक्षा करनी चाहिए। चरित्र जब तक नष्ट नहीं होता तब तक कुछ भी न हो तो भी ब्राह्मण का

ब्राह्मणत्व बना रहता है। किन्तु चरित्र में बट्टा लगते ही ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है। जो केवल पढ़ते पढ़ाते हैं या केवल शास्त्रों को देखा करते हैं वे सब मूर्ख हैं, उनका वैसा करना एक व्यसन है। जो ब्राह्मण क्रियावान् है वही पंडित है। दुराचारी ब्राह्मण चारों वेद भी पढ़ा हो, तो शूद्र से गया बीता है। जो मन को मारकर अग्निहोत्र आदि कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मण हैं।

"कौशिक और पतिव्रता का उपाख्यान"

मार्कण्डेय मुनिजी बोले कि हे राजेन्द्र, वेदपाठी तपस्वी धर्मात्मा कौशिक नामक एक ब्राह्मण था। किसी समय वह एक वृक्ष के नीचे बैठकर वेद पढ़ रहा था; इतने में वृक्ष के ऊपर बैठे हुए बगुले ने उसके शरीर पर बीट कर दी। ब्राह्मण ने क्रोध से ऊपर देखा, तत्क्षण वह पक्षी भस्म हो गया। तदन्तर कुछ दिन बाद की बात है कि एक दिन उस ब्राह्मण ने भिक्षा के लिये किसी गाँव में जाकर एक गृहस्थ के घर के द्वार से आवाज लगाई। आवाज को सुनकर गृहस्थ की स्त्री ने कहा—महाराज, मैं अभी भिक्षापात्र माँज रही हूँ, अतः आप थोड़ी देर ठहर जाइये। वह स्त्री भिक्षा पात्र माँज ही चुकी थी, इतने में बाहर से उसका पति आ गया और वह अर्घ्यादि पूजा से अपने पति की सेवा करने लगी। सेवा करते करते जब उस स्त्री को भिक्षुक की याद आई तो वह भिक्षा लेकर उस ब्राह्मण को देने आयी। जब ब्राह्मण ने उस स्त्री को देखा तो वह क्रोध में आकर बोला कि तुमने मुझे रोका क्यों था; समय नहीं है, कहकर विदा क्यों नहीं किया ? स्त्री बोली कि हे विप्रवर! आप मुझे क्षमा करें, क्योंकि ब्राह्मणों का क्षमा ही भूषण होता है। यदि

आप मुझपर क्रुद्ध भी हो जायेंगे तो मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। मैं बगुले की तरह नहीं हूँ जो कि आप मुझे दृष्टि से ही भस्म कर देंगे। मैं भी पतिव्रता हूँ और सदा पति-सेवा किया करती हूँ। तथा पति-सेवा को ही सबसे बड़ा धर्म समझती हूँ। पति-सेवा से ही आपने जो बगुला जलाया था उसको मैंने घर बैठे ही जान लिया। इसलिये क्रोध मनुष्य का शत्रु है और उसको छोड़ देना चाहिये। तदनन्तर वह पतिव्रता स्त्री ब्राह्मणों के लक्षणों को इस प्रकार कहने लगी।

[महाभारत वनपर्व—अध्याय २०६ श्लोक ३२ से ४१ तक]

स्त्र्युवाच

क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम।
यः क्रोधमोहौ त्यजति तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

स्त्री बोली—हे द्विज-श्रेष्ठ! हमेशा शरीर में रहनेवाला क्रोध मनुष्य का शत्रु है। इसलिये जो क्रोध और मोह का त्याग कर देता है उसको ही देवताओं ने ब्राह्मण कहा है।

यो वदेदिह सत्यानि गुरुं सन्तोषयेत च।
हिंसितश्च न हिंसेत तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

जो सर्वदा सत्य बोलता है, तथा गुरु को प्रसन्न रखता है, किसी के द्वारा सताया जाने पर भी आप उसे पीड़ा नहीं पहुँचाता, उसको देवताओं ने ब्राह्मण कहा है।

जितेन्द्रियो धर्मपरः स्वाध्यायनिरतः शुचिः।
कामक्रोधौ वशौ यस्य तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

जो जितेन्द्रिय धर्मनिष्ठ स्वाध्यायनिरत पवित्र हृदय होकर काम और क्रोध को अपने वश में कर चुका हो उसको देवताओं ने ब्राह्मण कहा है।

यस्य चाऽऽत्मसमो लोको धर्मज्ञस्य मनस्विनः।
सर्वधर्मेषु चरतस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

जो सब लोगों को अपने समान जानता है, सर्व प्रकार के धर्म-कर्म में प्रेम रखता है, उसी मनस्वी को देवताओं ने ब्राह्मण कहा है।

योऽध्यापयेदधीयीत यजेद्वा याजयीत वा।
दद्याद्वापि यथाशक्ति तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

जो पढ़ता-पढ़ाता, यज्ञ करता-करवाता, तथा यथाशक्ति दान भी करता है, उसको ही देवताओं ने ब्राह्मण कहा है।

ब्रह्मचारी वदान्यो योऽप्यधीयाद् द्विजपुंगवः।
स्वाध्यायवानप्रमत्तस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

जिसने ब्रह्मचारी रहकर सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन किया हो, तथा जिसने सावधानी से स्वाध्याय किया हो, उसको देवताओं ने ब्राह्मण कहा है।

यद् ब्राह्मणानां कुशलं तदेषां परिकीर्तयेत्'
सत्यं तथा व्याहरतां नानृते रमते मनः॥

ब्राह्मण लोग सदा शुभ और सत्य वाक्यों का प्रयोग किया करते हैं। उनका मन कभी भी मिथ्या में नहीं रमता।

धर्मं तु ब्राह्मणस्याऽऽहुः स्वाध्यायं दममार्जवम्।
इन्द्रियाणां निग्रहं च शाश्वतं द्विजसत्तम॥

हे द्विजवर! स्वाध्याय, क्रोध-त्याग और इन्द्रिय-दमन ही ब्राह्मण का धर्म माना गया है।

सत्यार्जवे धर्ममाहुः परं 'धर्मविदो जनाः।
दुर्ज्ञेयो शाश्वतो धर्मः; स च सत्ये प्रतिष्ठितः॥

धर्मात्मा पुरुषों ने सत्य और सरलता को परम धर्म माना है; किन्तु संक्षेप में इतना जान लेना ही बहुत है कि धर्म, सत्य में ही स्थित रहता है।

श्रुतिप्रमाणो धर्मः स्यादिति वृद्धानुशासनम् ।
बहुधा दृश्यते धर्मः सूक्ष्म एव द्विजोत्तम ॥

वृद्धों का कहना है कि श्रुति (वेद) ही धर्म के बारे में सर्वोपरि प्रमाण है । उसमें इसका वर्णन बहुत प्रकार से किया गया है ; इसी से कहा जाता है कि धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है ।

भविष्य-पुराण ब्राह्म पर्व अ० ४० में वर्ण-व्यवस्था

शतानीक उवाच

अहोवत ! महत्कष्टं संशयो हृदि वर्तते ।
कार्तिकेयस्य माहात्म्यं श्रुत्वा जन्म तथा द्विज ॥ १ ॥
अनेक - जनितस्येह कार्तिकेयस्य सुव्रत ।
माहात्म्यं सुमहद्विप्र कथमेतद्विभाव्यते ॥ २ ॥
जातिः श्रेष्ठा भवेद्वीर उत कर्म भवेद्वरम् ?
संशयस्तु महानत्र दृष्ट्वा मे कृत्तिकासुतम् ॥ ३ ॥
एतद्वद विनिश्चित्य न यथा संशयो भवेत् ।
जन्मतः कर्मणश्चैव यज्ज्यायस्तद् ब्रवीहि मे ॥ ४ ॥

राजा शतानीक पूछते हैं कि हे सुमन्तु मुनि ! स्वामी कार्तिकेय के जन्म को सुन हमको अति सन्देह होता है, क्योंकि अनेकों से तो उनकी उत्पत्ति हुई और उनके माहात्म्य तथा प्रभाव का अत्यन्त वर्णन किया है, इसमें जाति उत्तम है, कि कर्म ? आप मेरा यह सन्देह निवृत्त करें, और इन दोनों में जो श्रेष्ठ हो वह कहें ॥ १ श्लो० से ४ तक ॥

सुमन्तुरुवाच

इममर्थं पुरा पृष्टो ब्रह्मा शिष्यैर्मनीषिभिः ।
यदुक्तं तेन तेषाञ्च तत्ते वच्मि, निबोध मे ॥ ५ ॥

सुरज्येष्ठं सुखासीनमभिगम्य महर्षयः ।
प्रणम्य च महाबाहो, विश्वामित्रस्य विप्रताम् ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा विस्मयमागत्य कौतूहलसमन्विताः ।
भक्तिं श्रद्धां पुरोधाय प्रणम्यानतकन्धराः ॥ ७ ॥

सुमन्तु मुनि कहने लगे कि हे राजन् यही बात मुनियों ने ब्रह्माजी से पूछी थी, जो ब्रह्माजी ने मुनियों से कही वही हम आपको सुनाते हैं। एक समय ब्रह्माजी अपने लोक में सुख से बैठे थे; उस अवसर पर सब ऋषि ब्रह्माजी के समीप गये, और प्रणाम कर कुशल-प्रश्न के पश्चात् पूछने लगे ॥ ५ से ७ तक ॥

ऋषय ऊचुः

भो ब्रह्मन्नादिकल्पे हि ब्राह्मण्यं ब्रूहि किं भवेत् ।
जात्यध्ययनदेहात्मसंस्काराचारकर्मणाम् ॥ ८ ॥
बाह्याभ्यन्तर-सामान्यविशेषा यदि कृत्रिमाः ।
मनोवाक्कर्मशारीरजातिद्रव्यगुणात्मकाः ॥ ९ ॥
संत्यव्यक्ताः प्रसिद्धा ये जातिभेदविधायिनः ।
वस्तुभेदाः (भूताः) परोक्षैर्वा प्रमाणैर्न विनिश्चिताः ॥१०॥
अव्यक्तागमसिद्धश्चेज्जातिभेदविधिर्नृणाम् ।
विकल्पोऽयं न पुष्णाति भवतः शेमुषीबलम् ॥११॥

ब्रह्मोवाच

एवमेतन्न सन्देहो यथा यूयं वदन्ति ह ।
शृणुध्वं योगिनो वाक्यं सतर्कं शिष्यश्रेयसे ॥१२॥

योगेश्वर उवाच

प्रमाणे हि प्रसिद्धे तु भिन्नार्थविषये यतः ।
स्पष्टयोग्यार्थविषयं प्रत्यक्षं तावदीक्षते ॥१३॥

सामान्यातीन्द्रियग्राही सिद्धान्तोऽभ्युपगम्यते ।
स एव भगवानेकं प्रमाणमिति चेन्न तत् ॥१४॥
यस्माद्विविधमेतत्ते सङ्कटं भद्र वर्तते ।
वेदस्य पौरुषेयत्वं नित्यजातिसमर्थकम् ॥१५॥
कार्या विशेषा वेदोक्ता न युक्तमकृतं वचः ।
ताल्वादिकरणानाञ्च व्यापारानन्तरं श्रुतेः ॥ १६ ॥
व्यापारात्परतस्तस्य प्रागभावविशेषतः ।
तद्भावानुविधायित्वमन्वयव्यतिरेकतः ॥ १७ ॥
तस्माद्धूमाग्निवद्वाऽर्थ-फलभावोऽवतिष्ठते ।
न च व्यापारवचसोरन्यथानुपपत्तितः ॥ १८ ॥
पुरुषानुगता जातिर्ब्राह्मणत्वादिकास्ति चेत् ।
द्विवर्ण-जातिभेदेन प्रत्यक्षार्थोपलक्षणात् ॥ १९ ॥

गोवर्गमध्यञ्च गतो यथाश्वो,
निर्धार्यते ज्ञैः सुविचक्षणत्वात् ।
मनुष्यभावादविशिष्यमाण-
स्तद्वद्द्विजः शूद्रगणान्न भिन्नः ॥ २० ॥
मनुष्यजातेर्न परो विशेषो
यः कल्प्यते सर्वनरानुयायी ।
संस्कारयुक्ता हि क्रिया विशिष्टा
द्विजन्मनां शूद्रविवेकहेतुः ॥ २१ ॥

ऋषि बोले—कि हे ब्रह्मन्जी ! विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए [सु]न हमारे हृदयमें परम सन्देह उत्पन्न हो रहा है । ब्राह्मणत्व क्या पदार्थ है ? जाति, वेदाध्ययन, देह और आत्मा के संस्कार, आचार वैदिक [क]र्म, इन सब में ब्राह्मणत्व का हेतु कौन सा है ? कदाचित् [क]हो कि जीव ही ब्राह्मण है, तो वह संसार की क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, [चां]डाल, श्वान, शूकर, आदि योनियों में घूमता है ; फिर क्योंकर ब्राह्मण

रह सकता है ? जैसे गौओं के समूह में अश्व पृथक् पहिचाना जाता है
ऐसे मनुष्यों में ब्राह्मण को नहीं जान सकते। इस कारण आप कृ
कर वर्णन करें कि ब्राह्मणत्व क्या वस्तु है ॥ ८ ॥ २०।२१॥

जीवोऽपि ब्राह्मणः प्रोक्तो यैरतत्त्वज्ञमानवैः ।
प्रभ्रष्टब्राह्मणत्वास्ते जायन्ते विप्रसङ्गतः ॥ २२ ॥
जराजन्मान्तरक्लेशदुष्टग्राहकुलाकुलम् ।
नरतिर्यगसच्छूद्रयोनिदुःखोर्मिसङ्कटम् ॥ २३ ॥
दौःस्थित्यरोगशोकार्तिजनावर्तसमन्वितम् ।
श्वानशूकरचाण्डाल-कृमिकूर्मादिकायकम् ॥ २४ ॥
संसारसागरं घोरं मग्नः खलु परिप्लवन् ।
भूरिपापभराक्रान्तः स जीवो ब्राह्मणः कथम् ? ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

सप्तव्याधकथा विप्रा मनुना परिकीर्तिता ।
तां निशम्य यदुश्रेष्ठ नित्यं जातिपदं त्यजेत् ॥ २६ ॥
सप्तव्याधा दशार्णेपु मृगाः कालञ्जरे गिरौ ।
चक्रवाकाः सरिद्द्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥ २७ ॥
तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ ॥ २८ ॥
तस्मान्न जीवे ब्राह्मण्यं पश्यामो हि कथञ्चन ॥ २९ ॥

शखादिमद्भार्गवजातियुक्तो
गजाश्वगोऽजोष्ट्रखरादिकानाम् ।
शक्त्या कृतो ह्यङ्गजवर्णधर्मै-
र्भेदः स्फुटं लक्षणतोऽत्र यद्वत् ॥ ३० ॥
तदुत्तरान्नैव विकर्तनीया
ब्राह्मण्यजातिर्नृषु नास्ति काचित् ।

नित्याकृतिर्नानुपभेदरूपा
यथाहि भेदः परमोऽत्र सिध्येत् ।
सिताद्यसाधारणतुल्यरूपाः
सनातनोऽङ्गेषु न वर्णभेदः ॥ ३१ ॥
ब्राह्मण्यमध्रुवमिदं किल कृत्रिमत्वा-
दकृत्रिमं भवति सामयिकत्वयोगात् ।
साङ्केतिकं सुकृतलेशविशेषलब्धं
वाणिज्य-भेषजकृतामिव जातिभेदाः ॥ ३२ ॥
किं ब्राह्मणाः ये सुकृतं त्यजन्ति,
किं क्षत्रिया लोकमपालयन्तः ।
स्वधर्महीना हि तथैव वैश्याः,
शूद्राः स्वमुख्यक्रियया विहीनाः ॥ ३३ ॥
तस्मान्न गोऽश्ववत्कश्चिज्जातिभेदोऽस्ति देहिनाम् ।
कार्यशक्तिनिमित्तस्तु सङ्केतः कृत्रिमो भवेत् ॥ ३४ ॥
एवं प्रमाणैः प्रतिषिध्यमानां
साङ्केतिकीं याति नरो व्यवस्थाम् ।
स्वकीयसिद्धां स्वमतैर्निषिद्धां
न बुध्यते मूढमना वराकः ॥ ३५ ॥
गोमहिष्यजवाज्युष्ट्रवानेयाविगजाधिपाः ।
प्रेष्यवार्धुषिका कार्यकरणोद्यतमानसाः ॥ ३६ ॥
वणिक्कारुक्रियाविष्टाः दिव्यास्तेऽपि च ये द्विजाः ।
विनष्टास्ते तु विज्ञेयाः क्रव्यादाश्च कुशीलवाः ॥ ३७ ॥
पलाण्डुलशुनादाश्च मृग्युष्ट्रीक्षीरपायिनः ।
मांससर्वरसक्षीरक्रयविक्रयकारिणः ॥ ३८ ॥
पुनर्भूवृषलीवेश्याचाण्डालस्त्रीनिषेविणः ।
शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गाः प्रेतवस्त्रान्नभोजनाः ॥ ३९ ॥

मृतसूतकलब्धान्नपानाद्यभ्यवहारिणः ।
ब्रह्मदेवपितृभूतमनुष्येषु वहिष्कृताः ॥ ४० ॥
मात्सर्यमतविद्वेषतृष्णाकामतमोमयाः ।
हीनाचारा हि ये केचिदपरे पिशुना द्विजाः ।
प्रकारैर्बहुभिः सर्वे ते प्रणश्यन्ति नान्यथा ॥ ४१ ॥
एवं शास्त्रोदितन्यायमार्गभ्रष्टास्तु ये नराः ।
विशिष्टगोत्रसंस्कारकलापसकलात्मकाः ॥ ४२ ॥
वेदानध्यापयन्तोऽपि तेऽधीयानाः श्रुतिक्रमात् ।
ब्राह्मणत्वाद्विहीयन्ते दुराचारविधायिनः ॥ ४३ ॥
तस्मान्न जातिरेकत्र भूतात्मास्त्यनपायिनी ।
नाशित्वादत्र च श्लोकान्मानवाः समधीयते ॥ ४४ ॥
सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥ ४५ ॥
गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथाकारुकुशीलवान् ।
प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव शूद्रांस्तान्मनुरब्रवीत् ॥ ४६ ॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियो याति विप्रत्वं विद्याद्वैश्यं तथैव च ॥ ४७ ॥

ब्रह्माजी मुनियों का यह प्रश्न सुन, कहने लगे कि हे मुनीश्व[रो!] मनुजी की कही सप्तव्याध-कथा सुनने से जीव में ब्राह्मणत्व का सन्[देह] निवृत्त हो जाता है। दशार्ण देश में सात व्याध थे। वे सातों काल[ञ्जर] पर्वत में मृग हुए; सरिद् द्वीप में वे ही सातों चक्रवाक, मानसरोवर [में] हंस, और कुरुक्षेत्र में वेद के पारगामी ब्राह्मण हुए। इस हेतु, जीव [को] तो किसी प्रकार ब्राह्मण नहीं कह सकते। और जैसे गवय [नी[ल]] गाय] से गौ का भेद गल-कम्बल करके होता है, ऐसा भी कोई चिन्ह [न]हीं कि जो ब्राह्मण का इतर मनुष्यों से भेद करे; इससे जाति भी ब्राह्[मण] नहीं। गौ महिषी बकरी भेड़ ऊँट गधे खच्चर घोड़े हाथी आदि

व्यवसाय (पेशा) करनेवाला, दूसरे का सेवक, वनिया लुहार आदि के पेशेवाला, नट आदि का काम करनेवाला, मांस लशुन प्याज़ भक्षण करनेवाला, मद्य और ऊटनी का दूध पीनेवाला ; मांस लवण आदि रस और दूध बेचनेवाला, पुनर्विवाहिता, शूद्रा चाण्डाली दासी आदि स्त्रियों से संग करनेवाला, शूद्र का अन्न प्रेत का अन्न, जन्म और मरण के अशौच का अन्न भोजन करनेवाला, देवता माता पिता गुरु आदि से ईर्ष्या द्वेष और अहंकार करनेवाला और इस तरह के अन्यान्य नीच कर्म करनेवाला मनुष्य यदि वेद वेदाङ्ग का पठन पाठन करनेवाला उत्तम कुल में उत्पन्न ब्राह्मण भी हो, तो वह अपने ब्राह्मणत्व से हीन हो जाता है, इसलिये ब्राह्मणत्व एक शरीर में स्थिर भी नहीं हो सकता। मनुजी ने भी यह कहा है कि मांस लवण लाक्षा दूध आदि पदार्थ बेचने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। जो गौओं से अपना निर्वाह करे, खेती करे, नौकरी करे, नट-वैश्य आदि का कर्म करे, वह ब्राह्मण शूद्र के तुल्य होता है। इस प्रकार ब्राह्मण से शूद्र और शूद्र से ब्राह्मण भी बन जाता है। २६—४७ इति।

इति श्री-भविष्यमहापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
षष्ठीकल्पे कार्तिकेयवर्णने जातिवर्णनं नाम
चत्वारिंशोऽध्यायः।

——

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

ब्रह्मोवाच

वेदाऽध्ययनमप्येतद्ब्राह्मण्यं प्रतिपद्यते ।
विप्रवद् वैश्य-राजन्यौ राक्षसा रावणादयः ॥ १ ॥
श्वादचाण्डालदासाश्च लुब्धकाभीरधीवराः ।
येऽन्येऽपि वृषलाः केचित्तेऽपि वेदानधीयते ॥ २ ॥
शूद्रा देशान्तरं गत्वा ब्राह्मण्यं क्षत्रियं श्रिताः ।
व्यापाराकारभाषाद्यैर्विप्रतुल्यैः प्रकल्पितैः ॥ ३ ॥
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
प्रोद्वहन्ति शुभां कन्यां शुद्धब्राह्मणजां नराः ॥ ४ ॥
अथ वाऽधीत्य वेदांस्तु क्षत्र-वैश्यास्तु वा नराः ।
गौडपूर्वां कृतामीयुर्जातिं वा दाक्षिणात्यजाम् ॥ ५ ॥
अपरिज्ञातशूद्रत्वाद्ब्राह्मण्यं यान्ति कामतः ।
तस्मान्न ज्ञायते भेदो वेदाध्याय-क्रियाकृतः ॥ ६ ॥

ब्रह्मा ने कहा—हे मुनीश्वरो ! वेद पढ़ने से भी ब्राह्मण नहीं हो क्योंकि रावणादि राक्षसों ने भी वेद पढ़ा था ; और भी शूद्र चाण्‍ धीवर आदि कई जाति के लोग छल से वेद पढ़ लेते हैं, परन्तु ब्राह्मण न हो सकते। कोई शूद्र देशान्तर में जाकर ब्राह्मण बन वेद पढ़ लेते हैं, उत्तम ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर लेते हैं, अथवा विना पढ़े भी प गौड़, पञ्च द्राविड़ आदि में किसी प्रकार का ब्राह्मण बन, सत्कुल में वि कर लेते हैं। इस प्रकार वेद पढ़ने से भी ब्राह्मण की पहिचान नहीं सकती है॥ १ से–६ ॥

शास्त्रकारैस्तथाचोक्तं न्यायमार्गानुसारिभिः।
ते साधुमतमाकर्ण्य सन्तः सन्ति विमत्सराः ॥ ७ ॥
आचारहीनान्न पुनन्ति वेदाः,
यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
शिल्पं हि वेदाध्ययनं द्विजानां,
वृत्तं स्मृतं ब्राह्मणलक्षणन्तु ॥ ८ ॥
अधीत्य चतुरो वेदान्यदि वृत्ते न तिष्ठति।
न तेन क्रियते कार्यं स्त्रीरत्नेनेव षंढकः ॥ ९ ॥

शास्त्रकार यह कहते हैं कि—आचारहीन मनुष्य को वेद पवित्र नहीं कर सकते हैं; चाहे वे भलीभाँति अङ्गों सहित भी क्यों न पढ़ गये हों। वेद पढना तो ब्राह्मणों का शिल्प है ; किंतु आचरण ही ब्राह्मण का मुख्य लक्षण है। चारों वेद पढ़ लेने पर भी जो आचार हीन है वह ब्राह्मणत्व के योग्य नहीं, जैसे नपुन्सक नर स्त्री-रत्न के योग्य नहीं होता है ॥ ७ से-९ ॥

शिखाप्रणवसंस्कारसन्ध्योपासनमेखलाः ।
दण्डाजिनपवित्राद्याः शूद्रेष्वपि निरङ्कुशाः ॥ १० ॥
प्रसङ्गोऽपि हि शूद्राणां न शक्यो विनिवारितुम्।
देवोत्तमत्रयेणापि निवर्तन्ते नराः स्वयम् ॥ ११ ॥
तस्मान्नैतेऽपि लक्ष्यन्ते विलक्षणतया नृणाम्।
यज्ञोपवीतसंस्कारमेखलाचूलिकादयः ॥ १२ ॥
आभिचारिकमन्त्राद्यैर्दुर्लभत्वादिभाषणैः।
ब्राह्मणस्यैव शक्तिश्चेत्केनास्य विनिहन्यते ॥ १३ ॥
तपः-सत्यादिमाहात्म्याद्देवतासमयस्मृतिः ।
मन्त्रशक्तिर्नृणामेषां सर्वेषामपि विद्यते ॥ १४ ॥
वचनं दुर्वचस्यापि क्रियते सर्वमानवैः।
शूद्रब्राह्मणयोस्तस्मान्नास्ति भेदः कथञ्चन ॥ १५ ॥

शापानुग्रहकारित्वं शक्तिभेदो न विद्यते ।
चौरचाटादिराजन्यदुर्जनाभिहते नृणाम् ॥ १६ ॥
आत्मदुःखोदयापायं स्वेषु जन्तुषु रक्षणम् ।
कर्तुं न प्रभवेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तद्वदेव हि ॥ १७ ॥
मा भूद्युगे कलावेतद्देशे चाकार्यकृद्द्विजे ।
स्यादन्यदेशकालादौ द्विजानामतिशायिनाम् ॥ १८ ॥
शापानुग्रहसामर्थ्यमन्यद्वाध्यात्मगोचरम् ।
ब्रह्मसाधनमेतद्धि लिङ्गं केचित् प्रचक्षते ॥ १९ ॥
संसारारक्तचेतस्का मोहान्धतमसावृताः ।
पतन्त्युन्मार्गगर्तेषु प्रत्यग्नि शलभा यथा ॥ २० ॥
जातिधर्मः स्वयं किञ्चिद्विशेषः श्रुतिसङ्गमात् ।
असिद्धः शूद्रजातीनां प्रसिद्धो विप्रजातिषु ॥ २१ ॥
संस्कारो योनिसाध्यो वा सामग्रीप्रभवोऽथवा ।
शूद्रेभ्योऽतिशयं धत्ते यः साधारणतागुणः ॥ २२ ॥
विप्राणां पञ्चधा भेदः कल्पनीयस्तु पण्डितैः ।
न जातिजस्त्रयीजो वा विशेषो युक्तिबाधकात् ॥
क्रमाक्रमक्रियाः सन्ति न सनातनवस्तुनः ॥ २३ ॥
नित्यो न हेतुर्विगतक्रियत्वाद्धेतुर्भवेद्भेदविशेषतः सः ।
स तत्समस्तत्प्रतिसन्निधानात्कालात्ययेक्षित्वमयुक्तमेव॥२४॥
स्वान्तःशरीरवृत्तिस्थः श्रुतियोगादुदेति यः ।
सोनन्यवेदविज्ञातस्वभावोऽन्यैर्न गम्यते ॥ २५ ॥
विशिष्टाधीतिधर्मत्वे कृत्रिमा ब्रह्मसङ्गतिः ।
यस्यास्त्यतिशयस्तस्य नान्यो नाश्रयते यदि ॥ २६ ॥
दृश्यस्वभावं किमभीष्टमेतद्
ब्राह्मण्यमाहोस्विददृष्टरूपम् ।

सर्वैः प्रतीयेत हि दृश्यरूपं
ततोऽन्यथावद्गतिरेव न स्यात् ॥ २७ ॥
सामञ्यभावात्परमं विशेषं
भूदेवगात्रस्थमभूमिदेवाः ।
स्मरन्ति तेनात्मनि पुण्यपापं
यथा तथेत्येतदयुक्तमुक्तम् ॥ २८ ॥
सामग्र्यनुष्ठानगुणैः समग्रा
शूद्राः यतः सन्ति समा द्विजानाम् ।
तस्माद्विशेषो द्विजशूद्रनाम्नो-
नाध्यात्मिको बाह्यनिमित्तको वा ॥ २९ ॥

कई शूद्र भी सन्ध्योपासन आदि करते हैं ; दण्ड मेखला यज्ञोपवीत आदि धारण कर लेते हैं ; उनको कोई मना नहीं कर सकता है। अभिचार आदि कर्म शूद्र भी कर सकते हैं, तप सत्य आदि के प्रभाव से देवता का अनुग्रह और मन्त्र-सिद्धि शूद्रों को भी होती है। शाप-अनुग्रह का सामर्थ्य भी तप करने से शूद्रों में हो जाता है। ये सब बातें शूद्र और ब्राह्मणों में तुल्य हो सकती हैं । इसलिये ब्राह्मण तथा शूद्र में वर्ण-कृत भेद कर्म से ही हैं, जन्म से नहीं ॥ १० से–१५–१६–२९ ॥

संस्कारतः सोऽतिशयो यदि स्यात्
सर्वस्य पुंसोऽस्त्यतिसंस्कृतस्य ।
यः संस्कृतो विप्रगणप्रधानो
व्यासादिकस्तेन न तस्य साम्यम् ॥३०॥

संस्कार भी ब्राह्मणत्व के हेतु नहीं हैं, क्योंकि सम्यक् संस्कृतों में भी ब्राह्मणत्व नहीं देखा जाता है, प्रत्युत असंस्कृत व्यासादियों में ब्राह्मणत्व की अतिशयता देखी जाती है ॥ ३० ॥

हेतुत्वं घटते नैषां जात्यादीनामसम्भवात् ।
जातेरकृतकत्वाच्च अधीते न विशेषतः ॥ ३१ ॥

संस्कारातिशयाभावादन्तरस्यागते परैः ।
भौतिकत्वाच्छरीरस्य समस्तानामसंहतैः ॥ ३२ ॥
किञ्चान्यनास्तिकम्लेच्छयवनादिजनेष्वलम् ॥ ३३ ॥
वेदोदितबहिर्दुष्टचरितेषु दुरात्मसु ।
धर्मादतिशयो दृष्टः क्रूरसाहसिकादिषु ।
तस्माद्विप्रेषु जात्यादिसामग्रीप्रभवो न सः ॥ ३४ ॥
तस्मान्न च विभेदोऽस्ति न बहिर्नान्तरात्मनि ।
न सुखादौ न चैश्वर्यें नाज्ञायां नाभयेष्वपि ॥ ३५ ॥
न वीर्यें नाकृतौ नाक्षे न व्यापारे न चायुषि ।
नाङ्गे पुष्टे न दौर्बल्ये न स्थैर्यें नापि चापले ॥ ३६ ॥
न प्रज्ञायां न वैराग्ये न धर्में न पराक्रमे ।
न त्रिवर्गें न नैपुण्ये न रूपादौ न भेषजें ॥ ३७ ॥
न स्त्रीगर्भें न गमने न देहमलसंप्लवे ।
नास्थिरन्ध्रे न च प्रेम्णि न प्रमाणे न लोमसु ॥ ३८ ॥
शूद्रब्राह्मणयोर्भेदो मृग्यमाणोऽपि यत्नतः ।
नेक्ष्यते सर्वधर्मेषु संहतैस्त्रिदशैरपि ॥ ३९ ॥
उक्तमात्राविसम्भूतिर्विचारक्रमकारिभिः ।
वृद्धवृन्दारकाधीशैरप्रधृष्यमिदं वचः ॥ ४० ॥

शरीर भी सब मनुष्यों के तुल्य ही हैं, प्रत्युत म्लेच्छ और नास्तिकादि लोग, प्रायः शरीर से अधिक पुष्ट और बलवान् होते हैं। देह, आत्मा, वचन, सुख, ऐश्वर्य, रोग, आज्ञा, वीर्य, आकृति, इन्द्रिय-व्यापार, आयुष, दुर्बलता, पुष्टता, चञ्चलता, स्थिरता, बुद्धि, वैराग्य, धर्म, पराक्रम, रूप, औषध, गर्भ, देह की मलिनता, उज्ज्वलता, अस्थि, रोम, मांस, त्वचा, त्रिवर्ग, रुचि इत्यादि पदार्थ ब्राह्मण और शूद्र में तुल्य ही होते हैं। इन बातों में शूद्र और ब्राह्मण का भेद देवता भी नहीं कर सकते ॥ ३१ से–४० ॥

न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुभ्राः,
न क्षत्रियाः किंशुकपुष्पवर्णाः।
न चेह वैश्या हरितालतुल्याः,
शूद्रा न चाङ्गारसमानवर्णाः ॥ ४१ ॥

पादप्रचारैस्तनुवर्णकेशैः
सुखेन दुःखेन च शोणितेन।
त्वङ्मांसमेदोऽस्थिरसैः समाना-
श्चतुष्प्रभेदा हि कथं भवन्ति ॥ ४२ ॥

ब्राह्मण चन्द्र-किरणों के समान श्वेत वर्ण नहीं हैं; क्षत्रिय टेसू के फूल की भाँति रक्त-वर्ण नहीं; वैश्य हरिताल-से पीले नहीं; और शूद्र कोयले जैसे काले नहीं होते, कि सबको अलग-अलग पहिचान लेवें। चलना-फिरना, सोना-बैठना बोलना, सुख-दुःख सबको समान है, फिर मनुष्य चार प्रकार के कैसे हुए ॥ ४१–४२ ॥

वर्णप्रमाणाकृतिगर्भवास-
वाग्बुद्धिकर्मेन्द्रियजीवितेषु।
बलत्रिवर्गामयभेषजेषु
न विद्यते जातिकृतो विशेषः ॥ ४३ ॥

स एक एवात्र पतिः प्रजानां
कथं पुनर्जातिकृतः प्रभेदः।
प्रमाणदृष्टान्तनयप्रवादैः
परीक्ष्यमाणो विघटत्वमेति ॥ ४४ ॥

चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च,
तेषां सुतानां खलु जातिरेका।
एवं प्रजानां हि पितैक एव
पित्रैकभावान्न च जातिभेदः ॥ ४५ ॥

फलान्यथोदुम्बरवृक्षजाते-
यथाग्रमध्यान्तभवानि यानि ।
वर्णाकृतिस्पर्शरसैः समानि,
तथैकतो जातिरपि प्रचिन्त्या ॥ ४६ ॥
ये कौशिकाः काश्यपगौतमाश्च
कौण्डिन्यमाण्डव्यवशिष्ठगोत्राः ।
आत्रेयकौत्साङ्गिरसः सगर्गा
मौद्गल्यकात्यायनभार्गवाश्च ॥ ४७ ॥
गोत्राणि नानाविधजातयश्च
भ्रातृस्नुषामैथुनपुत्रभावाः ।
वैवाहिकं कर्म. न वर्णभेदाः
सर्वाणि शिल्पानि भवन्ति तेषाम् ॥ ४८ ॥

यदि एक पिता के चार पुत्र हैं, तो एक जाति के ही होते हैं, इसी प्रकार इस जगत् का पिता एक परमेश्वर है फिर उसकी सन्तान में क्यों कर जाति-भेद हो सकता है। जैसे एक वृक्ष के फल, रूप स्वाद आदि में तुल्य होते हैं, वैसे ही परमेश्वर-रूप वृक्ष से उत्पन्न हुए मनुष्य-रूप फल सब समान हैं। कौशिक, काश्यप, गौतम, कौंडिन्य, माण्डव्य, वसिष्ठ, आत्रेय, कौत्स, अङ्गिरा, गर्ग, मौद्गल्य, कात्यायन, भार्गव, भारद्वाज, आदि गोत्र भी ब्राह्मणत्व का हेतु नहीं, क्योंकि ये गोत्र सभी वर्णों में होते हैं ॥ ४३–४८ ॥

ये चान्ये पण्डिताः प्राहुर्देहब्राह्मणतां नृणां ।
तेषां दुर्दृष्टितिमिरमपनीयानुकम्प्य च ॥ ४९ ॥
न्यायाञ्जनौषधैर्दिव्यैः परिणामसुखावहैः ।
उपनीतैः प्रयत्नेन सुदृष्टिं संविदद्(ध्)महे ॥ ५० ॥
मूर्तिमत्त्वाच्च नाशित्वं, नाशित्वाच्छेषभूतवत् ।
देहाधारनिविष्टानां ब्राह्मण्यं न प्रकल्प्यते ॥ ५१ ॥

एकैकोऽवयवस्तेषां न ब्राह्मण्यं समश्नुते।
न चानेकसमूहोऽपि सर्वथाऽतिप्रसङ्गतः ॥ ५२ ॥
पृथिव्युदकवाय्वग्निपरिणामाविशेषतः।
देहतः सर्वभूतानां ब्राह्मणत्वप्रसङ्गतः ॥ ५३ ॥
देहस्य ब्राह्मणत्वं यैरतत्त्वज्ञैः प्रकल्प्यते।
संस्कर्तॄणां शरीरस्य तेषां न ब्रह्मता भवेत् ॥ ५४ ॥
मृग्यमाणे प्रयत्नेन देहे तन्नोपलभ्यते।
तस्मान्न देहे ब्राह्मण्यं, नाऽपि देहात्मकं भवेत् ॥ ५५ ॥

यदि शरीर को ब्राह्मण कहो, तो पहिले यह कहो, कि कोई अङ्ग ब्राह्मण है, अथवा सम्पूर्ण शरीर ? यदि एक अङ्ग को ब्राह्मण मानो, तो वह अंग कट जाने से ब्राह्मणत्व जाता रहेगा ; और यदि सम्पूर्ण शरीर को ब्राह्मण ठहराओ, तो मरने के अनन्तर उस शरीर का जो दाह करेगा वह ब्रह्महत्या का भागी होगा। यदि कहो कि ब्राह्मण की कन्या के साथ जो विवाह करे वह ब्राह्मण होता है, तो वही ब्राह्मण जब क्षत्रिय की कन्या से विवाह करेगा तब क्षत्रिय हो जायेगा। क्योंकि ब्राह्मण को चारों वर्णों की कन्याओं से विवाह करना लिखा है। इस लिये जाति, देह, कर्म, वेदाध्ययन आदि कोई भी ब्राह्मणत्व का हेतु नहीं हो सकता ॥ ४९–५१–से ५५ तक ॥

वर्णापसदचाण्डालश्वादादीनां प्रसज्यते।
यदि देहस्य विप्रत्वं भवद्भिरुपगम्यते ॥ ५६ ॥
देहशक्तिगुणैः क्षीणैः कायभस्मादिरूपवत्।
तस्माद्देहात्मकेनैतद्ब्राह्मण्यं, नाऽपि कर्मजम् ॥ ५७ ॥

इति श्रीभविष्यपुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे ब्राह्मण्यविवेकवर्णनं नाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः।

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः ।

ब्रह्मोवाच

अपरैश्च सदाचारयोगयुक्तैर्मनीषिभिः ।
यदकारि महासत्त्वैः सुभाषितमिदं शृणु ॥ १ ॥
बहुवनस्पतिशङ्खपिपीलिका-
भ्रमरवारणजातिमुदाहरन् ।
गतिषु कर्ममितो नटवत्सदा
भ्रमति जन्तुरलब्धसुदर्शनः ॥ २ ॥
रूपैश्वर्यज्ञानकुलैर्विभवैर्वर्मितो-
भूत्वा धर्मं पथं चेद्विजहासि ।
न वक्ष्ये व्रजन्भुवनानि त्वमटिष्यं-
स्तस्मादभिभस्मीभूते मद आत्मनः ॥ ३ ॥
जातिकुलरूपवयोवर्णानेकश्रुतमदान्धाः क्लीवाः ।
परत्र चेह च हितमप्यर्थं न पश्यन्ति ॥ ४ ॥
ज्ञात्वा भवपरिवर्ते जातीनां कोटिशतसहस्रेषु ।
हीनोत्तममध्यत्वं को जातिमदं बुधः कुर्यात् ॥ ५ ॥
नैकाञ्जातिविशेषानिन्द्रियनिवृत्तिपूर्वकान्सर्वान् ।
कर्मवशाद्गच्छत्यत्र कस्यैका शाश्वती जातिः ॥ ६ ॥
विद्वत्सदसि योऽप्याह संस्काराद्ब्राह्मणो भवन् ।
न्यायज्ञैः स निराकार्यो वाक्यैर्न्यायानुसारिभिः ॥ ७ ॥
गर्भाधानं, पुंसवनं, सीमन्तोन्नयनं तथा ।
जातकर्म, नामकर्म, तथान्नप्राशनञ्च वै ॥ ८ ॥

चूडोपनयनं चास्य, व्रतादेशस्तथैव च ।
समावर्तनमप्यन्य, त्पाणिग्रहणमेव च ॥ ९ ॥
इत्येवमादिसंस्कार-विधानैर्येतु संस्कृताः ।
त एव ब्राह्मणा येषां नैरन्तर्येण कामना ॥ १० ॥
यस्माद्धै ब्राह्मणा जाता ब्राह्मणैः कृतसंस्कृतैः ।
नायुः शक्तिर्हि कान्त्यादि-विशेषो विद्यते स्फुटः ॥ ११ ॥
तौ वा ब्राह्मणगात्रोत्थौ संस्कृताऽसंस्कृतौ नरौ ।
इष्टाऽनिष्टाप्त्यनाप्तिभ्यां न भिद्येते परस्परम् ॥ १२ ॥
ज्ञानाऽध्ययनमीमांसानियमैन्द्रियनिग्रहैः ।
विना संस्कारयोगेऽपि पुंसः शूद्रान्न भिन्नता ॥ १३ ॥
संस्कारः क्रियमाणश्च न शूद्रे च प्रवर्तते ।
संस्कृताङ्गश्च पापेभ्यो न पश्यति निवर्तते ॥ १४ ॥
विलासिनीभुजङ्गादिर्जनवन्मदविह्वलाः ।
व्यामुह्यन्ति सदाचाराद्ब्राह्मणत्वात्पतन्ति च ॥ १५ ॥
संस्कृतोऽपि दुराचारो नरकं याति मानवः ।
निःसंस्कारः सदाचारो भवेद्विप्रोत्तमः सदा ॥ १६ ॥
मन्त्रपूतात्मसंस्कारयुक्तोऽपि प्लवते न तु ।
ब्राह्मण्यादविकल्पं स पश्चाद्दुश्चरितो नरः ॥ १७ ॥
सामर्थ्यात्पतनं तस्माद्ब्राह्मण्यान्मुच्यते ध्रुवम् ।
दुरनुष्ठानसक्तानां पुंसां पुरुषपुङ्गवैः ॥ १८ ॥
किं कचिद्दृष्टमेवैतत् किं वास्पर्धाविदत्ययम् ।
तुल्यमुत्सहसे कर्तुमप्यदृष्टं तदा वद ॥ १९ ॥
आचारमनुतिष्ठन्तो व्यासादिमुनिसत्तमाः ।
गर्भधानादिसंस्कारकलापरहिताः स्फुटम् ॥ २० ॥
विप्रोत्तमाः श्रियं प्राप्ताः सर्वलोकनमस्कृताः ।
बहवः कथ्यमाना ये कतिचित्तान्निबोधत ॥ २१ ॥

ब्रह्मा ने कहा—हे मुनीश्वरो ! रूप, ऐश्वर्य, विद्या और जाति का अभिमान व्यर्थ है ; क्योंकि यह जीव, वनस्पति, शंख, चींटी, भ्रमर, हाथी आदि अनेक योनियों में जाकर नटकी भाँति नाना प्रकार के देह धारण करता है । फिर जाति का अभिमान कहाँ रहा, इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य कभी जाति का अभिमान न करे; क्योंकि जाति स्थिर नहीं रहती । जो कहो कि संस्कारों से ब्राह्मण होता है, तो गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण अन्नप्राशन, यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन, समावर्तन, विवाह आदि संस्कार जिनके होते हैं, उनका कुछ तेज अथवा आयुष् नहीं बढ़ जाता, और संस्कार-हीन लोग अल्पायुष् नहीं होते । सुख-दुःख भी दोनों तुल्य ही भोगते हैं । उत्तम संस्कार जिनके हुए हों वे दुराचरण करके पतित हो जाते हैं, और नरक में पड़ते हैं । परन्तु संस्कारहीन मनुष्य भी उत्तम चाल चलन से भले कहाते हैं, और स्वर्ग पाते हैं । संस्कारयुक्त पुरुष भी द्यूत, वेश्या-संग आदि कुकर्मों में आसक्त हो जाते हैं, और कितने ही संस्कारहीन लोग भी जप, तप, दान आदि सत्-कर्म करते देखे जाते हैं । व्यासादि मुनीश्वर संस्कारहीन होकर भी उत्तम आचरण से सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठ और जगत्पूज्य माने जाते हैं । इससे संस्कार भी ब्राह्मणत्व का निमित्त नहीं बन सकते । १—से—२१

जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः, श्वपाक्याश्च पराशरः ।
शुक्याः शुकः,कणादाख्यस्तथोलूक्याः सुतोऽभवत् ॥२२॥
मृगीजोऽथर्षश्रृङ्गोऽपि वशिष्ठो गणिकात्मजः ।
मन्दपालो मुनिश्रेष्ठो नाविकापत्यमुच्यते ॥ २३ ॥
माण्डव्यो मुनिराजस्तु मण्डूकीगर्भसम्भवः ।
बहवोऽन्येपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्ववद्द्विजाः ॥ २४ ॥
यच्चैतच्चारुचरितैरर्च्यमुच्चरितं वचः ।
तद्विचार्याचरन्नुच्चैराचारोपचितद्युतिः ॥ २५ ॥

हरिणीगर्भसम्भूत ऋष्यश्रृङ्गो महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम् ॥ २६ ॥
श्वपाकीगर्भसम्भूतः पिता. व्यासस्य पार्थिव।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम् ॥ २७ ॥
उलूकीगर्भसम्भूतः कणादाख्यो महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम् ॥ २८ ॥
गणिकागर्भसम्भूतो वसिष्ठश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम् ॥२९॥
नाविकागर्भसम्भूतो मन्दपालो महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम् ॥ ३० ॥
वेदतन्त्रजसंस्कारकलापाऽनिपुणैरपि।
विद्यातपोधनबलादुत्कृष्टं लभ्यते फलम् ॥ ३१ ॥
लब्धसंस्कारदेहाश्च महापातकिनो नराः।
ब्राह्मण्याद्विनिवर्त्तन्ते तस्मात्साङ्केतिकं विदुः ॥ ३२ ॥

इति श्रीभविष्यपुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे ब्राह्मण्यसंस्कारविवेकवर्णनं नाम द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः।

यदि कहो कि जन्म से ब्राह्मण होता है तो देखो कि व्यासजी कैवर्त्ती के गर्भ से, पराशर मुनि चण्डाली के पेट से, शुकदेव शुकी के उदर से, कणाद उलूकी से, ऋष्य श्रृङ्ग मृगी से, वसिष्ठ वेश्या से, मन्दपाल मुनि लवा नामक पक्षी की स्त्री से, तथा माण्डव्य मण्डूकी के गर्भ से उत्पन्न हुए। इस प्रकार और भी हजारों अधम योनि से जन्मे और उत्तम ब्राह्मण गिने गये। ये सब संस्कार-हीन हैं, और इनके जन्म भी उत्तम नहीं, परन्तु प्रबल तप करके, ये सब ब्राह्मण हुए। जिसमें संस्कार हो, और विद्या, तप, आदि भी हो, वह उत्तमोत्तम ब्राह्मण हो जाता है; किन्तु

सब संस्कारों से संस्कृत हो करके भी महापातक करने से ब्राह्मणत्व खो बैठता है। इसलिये संस्कार-निमित्तक ब्राह्मणत्व सांकेतिक है, वास्तविक नहीं। २२-३२।

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

ब्रह्मोवाच

किञ्चाऽन्यदपरं यूयं वेदमन्त्रविदो जनाः ।
प्रष्टव्या, कस्य संस्कारे विशेषमुपगच्छत ॥ १ ॥
किं देहस्योत येनाऽसौ निसर्गमलिनः स्थितः ।
शुक्रशोणितसम्भूतः शमलोद्भवकीटवत् ॥ २ ॥
निषेकादिश्मशानान्तैर्विविधैर्विधिविस्तरैः ।
देहिनोऽतिशयं केचिदुपगच्छन्ति मानवाः ॥ ३ ॥
तेषां गूढमनःकायवाग्विदुष्टैः सुचेष्टितैः ।
असंयतमनुष्याणां पक्षोऽयं दूष्यते मया ॥ ४ ॥
वैदिकाखिलसंस्कारसारभूता द्विजातयः ।
सर्वकार्यकरान्सर्वान्वृषलानतिशेरते ॥ ५ ॥
चण्डकर्मा विकर्मस्थो ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्तेनो गोघ्नः सुरापानः परस्त्रीरमणप्रियः ॥ ६ ॥
मिथ्यावादी मदोन्मत्तो नास्तिको वेदनिन्दकः ।
ग्रामयाजक-निर्ग्रन्थौ बहुदोषो दुरासदः ॥ ७ ॥
निषिद्धाचारसंसेवी चोरश्चाटो मदोद्धतः ।
धूर्तो नटः शठः पापी सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ ८ ॥
वाङ्मनः-कायजैर्दोषैर्हता ये ब्राह्मणाधमाः ।
ते न शुद्धिं व्रजन्तीह अपि यज्ञशतैरपि ॥ ९ ॥

ब्रह्मा ने कहा—हे मुनीश्वरो ! वेदवेत्ताओं से यह भी पूछना चाहिये कि वे संस्कार द्वारा, किसमें 'विशेष' (संस्कारजन्य 'अतिशय' रूप शक्ति विशेष) का होना समझते हैं ? क्या देह का वह 'विशेष' होता है ? इसका उत्तर है 'नहीं'—क्योंकि शुक्र-शोणित (बोज-रक्त) से उत्पन्न देह, विष्ठा से पैदा हुए कीड़े की तरह, स्वभावतः मलिन (अविशुद्ध) होता है। कई पुरुष वैदिक संस्कारों से संस्कृत देही (जीवात्मा) में संस्कारज 'अतिशय' का होना स्वीकार करते हैं, यह पक्ष भी दूषित है, क्योंकि द्विजों में भी अनेक लोग, मन शरीर और वाणी से विशेष दुष्ट और कुकर्म-निष्ठ हो जाने के कारण, वृषलों से भी नीच, अधम वन जाते हैं। क्रूर कर्म करनेवाला, ब्रह्मघ्न, गुरुदाराऽभिगामी, चोर, गोघ्न, मद्यप, परस्त्रीगामी, मिथ्यावादी, मदोन्मत्त, नास्तिक, वेदनिन्दक, मायाजाल, कलि आदि में आसक्त, अति दोषों से युक्त, निषिद्ध आचरण का सेवन करनेवाला, धूर्त, शठ, पापी, सर्वभक्षी, सर्व-विक्रयी, ऐसे जो ब्राह्मण हों, उनके चाहे सब संस्कार किये गये हों और वे सब वेद वेदाङ्ग पढ़े हों, परन्तु उनकी निष्कृति नहीं होती है। १—से—९ ॥

शूद्राणां यान्यनिष्टानि सम्पद्यन्ते स्वभावतः ।
विप्राणामपि तान्येव निर्विघ्नानि भवन्ति न ॥ १० ॥

तस्मान्मन्त्रोऽग्निहोत्रं वा वेद्यां पशुवधोऽपि वा ।
हेतवो नहि विप्रत्वे शूद्रैः शक्या क्रिया यथा ॥ ११ ॥

जो इष्ट, अनिष्ट आदि ब्राह्मण को होते हैं, वे ही शूद्र को भी होते हैं। इसलिये वेद-पठन, अग्निहोत्र, यज्ञ में पशु वध करना इत्यादि कोई कर्म भी ब्राह्मणत्व के हेतु नहीं। १०—११ ॥

ये चापि कर्मबन्धेन बद्धाः सीदन्ति जन्तवः ।
संसारानलसन्तापविक्लवीकृतमानसाः ॥ १२ ॥

ते जन्ममरणाटव्यां सुखामृतपिपासवः ।
कृपणस्याश्रयेऽटन्तो लभन्ते नैव निर्वृतिम् ॥ १३ ॥
चतुर्वर्णा नरा ये तु तत्तद्वीर्यै नराधमाः ।
तेषां सर्वात्मना सर्वैर्धर्मैः साङ्कर्यमीक्ष्यते ॥ १४ ॥
शूद्रविप्रादयो योनौ न भिद्यन्ते परस्परम् ।
सर्वधर्मसमानत्वात्संस्कारादि निरर्थकम् ॥ १५ ॥

योनि में ब्राह्मण, शूद्र आदि, हाथी, घोड़े आदि की तरह आपस में किसी भी अङ्गादिक की भिन्नता नहीं रखते हैं, सब अङ्गादि समान होता है। इसलिये संस्कारादि से माना गया भेद निर्थक है ॥ १५ ॥

तदनुष्ठान-वैधर्म्यवियोग-मरणादिभिः ।
असेव्यसेवनैरन्यैः शूद्र-विप्रादयः समाः ॥ १६ ॥
बुद्ध्या शक्त्या स्वभावेन धर्मैर्जात्यादिभिः श्रिया ।
कर्तव्यैः पुण्यपापाभ्यां शनैः सर्वशरीरगैः ॥ १७ ॥
वन्धनै रोधनैर्नानायातनोपायपीडनैः ।
दण्डैरदण्डकरणैर्विषादपरि (देवनैः) वेदनैः ॥ १८ ॥
सात्त्विकैः प्रीतिधर्माद्यै राजसैश्चित्रवेष्टितैः ।
तामसैस्ताप-मोहाद्यैर्दूयमानाः पुनः पुनः ॥ १९ ॥
श्लेष्ममारुतपित्ताद्यैर्महाबीभत्सदर्शनैः ।
क्वचिद्वृत्तिनिवृत्तिभ्यामृतानृतहिताहितैः ॥ २० ॥
अलङ्कारोपयोगेन मन्मथाद्यैर्विचेष्टितैः ।
धनलाभाशया नैकजन्तुसंघातपातनैः ॥ २१ ॥
अधिसिद्धिगतिं याति नानाविधमनोरथैः ।
आत्मस्नेह-परद्वेष-स्वीकृतद्रव्यरक्षणैः ॥ २२ ॥
अतिक्षीवत्वसंक्षोभक्षुतक्षामक्षमामयैः ।
यातनोपायपैशुन्यशून्यत्वोपशमैस्तथा ॥ २३ ॥

अप्रशस्तैरनुष्ठानैः समीपस्थापदः समाः ।
हिंसकाः प्राणिनः पापवितथालापभाषिणः ॥ २४ ॥
साधूनां भाषकाः स्तेना निर्दयाः पारदारिकाः ।
नीचकर्मसमाचाराः सर्वभक्षाः पिशाचवत् ॥ २५ ॥
दुष्कुलीना दुराचारा नृपाणामुपजीविनः ।
विप्रकार्या विकर्मस्था धनिनो दुष्टचेतसः ॥ २६ ॥
लुब्धका हरिणान्हत्वा वासं कृत्वा यथा वने ।
तथा खादन्ति पिशुना वहवश्च क्रियावशात् ॥ २७ ॥
वेदवादमधीयानाः प्राणिघाताभिशंसिनः ।
पुष्णन्ति कपटैरर्थान्वेदविक्रयिणोऽधमाः ॥ २८ ॥
मायिनो मत्सरग्रस्ता लुब्धा मुग्धा मदोद्धताः ।
चाटाः कार्पटिकाः क्रूराः कदर्याः कलहप्रियाः ॥२९॥

वैधव्य, (वैधर्म्य) वियोग, मरणादि सबको तुल्य होते हैं, वात, पित, कफ, धन की तृष्णा सबको होती है। दयाहीन, हिंसक, परमदाम्भिक, कपटी, लोभी, पिशुन, अतिदुष्ट लोग, वेद को पढ़कर संसार को ठगते हैं; और वेदविक्रय कर अपना पोषण करते हैं; अनेक प्रकार के छल-छिद्र द्वारा प्रजा की हिंसा करते हैं। केवल अपना सांसारिक सुख साधते हैं; ऐसे ब्राह्मण शूद्र से भी अधम होते हैं; इसलिये जाति वृथा है। १६—२७-२९ ॥

वाचाटा दुष्टकुलटा अटन्तो भाटकैः सह ।
भण्डमान्या भटाटोपैः संक्रुद्धाः सुविलुण्ठकाः ॥३०॥
पर्यटा भाटकाः जीवाः कण्ठकश्लोकभाषिणः ।
विक्रीयन्ते ह्यविक्रेयमभक्ष्यद्रव्यभक्षिणः ॥ ३१ ॥
शूद्रकर्मोऽनुतिष्ठन्तो निस्तपास्ते नराधमाः ।
सेवाऽध्यापन-वाणिज्य-कृष्याद्यारम्भलम्भिताः ॥३२॥

गृह्णन्तः सम्पदो बाह्याद्द्रव्यधान्यधनादिकाः ।
क्रोधाद्याभ्यन्तरान्दोषांस्तथा दुष्टमनोरथान् ॥
अत्यजन्तो विशिष्टानां श्रेष्ठास्ते कचमर्दिनः ॥ ३३ ॥
नोपादेयानि वस्त्राणि नित्यमाददते द्विजाः ।
हापयन्ति न हेयानि, कथन्ते गुरवः क्षितौ ॥ ३४ ॥
दण्डिका दिण्डिका भण्डाश्चण्डाश्चाण्डालचेष्टिताः ।
वैतण्डकास्ते निघ्नन्ति यथा सिंहो मृगान्पशून् ॥ ३५ ॥
निर्ग्रन्थं मुनिमालोक्य मन्यमानाः समुन्नतम् ।
परिभूयाऽवतिष्ठन्ते; धिक्तान्निक्तान्स्ववैरिणः ॥ ३६ ॥
तस्मात्संसारिकाः सत्त्वाश्चित्तक्लेशकलङ्किताः ।
दौःशील्यदौर्मनस्याद्यैस्तुल्यजातीयबन्धनात् ॥ ३७ ॥
शूद्रां प्ररोचते विप्रो रागिणीं मैथुनम्प्रति ।
सा कामदुःखविगमे गर्भं धत्ते समागमे ॥ ३८ ॥
कामं कामातुराभ्यस्तु रोचन्ते शूद्रमानवाः ।
मैथुनं प्रति ब्राह्मण्ये, तेऽपि तासां सुखावहाः ॥ ३९ ॥
ये तु जात्यादिभिर्भिन्ना गवाऽश्वोष्ट्र-मतङ्गजाः ।
ते विजातिषु नो गर्भं कुर्वतेऽपि सुखार्थिनः ॥ ४० ॥
अनड्वानेव गोरेव कामं पुष्णाति सङ्गमे ।
घोटकाश्च रतिं सम्यक्कुर्वते वडवासु च ॥ ४१ ॥
पतिं करभमेवाप्य करभी रमते मुदा ।
गजमेव पतिं लब्ध्वा सुखं तिष्ठति हस्तिनी ॥ ४२ ॥
तिर्यग्जाति-स्त्रिया साकं कुर्वाणोऽपि हि मैथुनम् ।
न तस्याः कुरुते गर्भं नरो, नाऽपि सुखासिकाम् ॥४३॥
तिरश्चा सह कुर्वाणा मैथुनं मनुजाङ्गना ।
नाधत्ते तत्कृतं गर्भं, न युक्तं मैथुनं तयोः ॥ ४४ ॥

नैवं कश्चिद्विभागोऽस्ति मैथुने स्त्री-मनुष्ययोः ।
येन संक्षीयते भेदः प्रस्फुटं द्विज-शूद्रयोः ॥ ४५ ॥
वेदपाठच्छलेनायं न क्रियाभिः प्रपद्यते ।
बहुभिर्जडसंघातैरविशिष्टे पदेऽहनि ॥ ४६ ॥
देहे देहिनि चामुष्मिन्नशुचावनवस्थिते ।
रागद्वेषादिभिर्दोषैरधिकं परिपीडिते ॥ ४७ ॥
कुलालचक्रवद्भ्रान्तमानसे विषयार्णवे ।
घोरदुःखभयाक्रान्ते समाजेऽनीश्वरात्मनि ॥ ४८ ॥
जन्ममृत्युजराशोकानिष्टयोगाग्निपीडिते ।
हीनसत्त्वशरीरादौ न विशेषो विभाव्यते ॥ ४९ ॥
तस्मान्मनुष्यभेदोऽयं सङ्केतबलनिर्मितः ।
ब्राह्मण्यं ब्राह्मणासङ्गाद्ब्राह्मणी चोपसेवते ॥ ५० ॥
पतिं त्यक्त्वा सुखास्वादलालसैर्मदलालसैः ।
आसेव्यते विटं गत्वा बन्धकी चेटकैरपि ॥ ५१ ॥
ब्राह्मण्यात्प्रच्यवन्तेऽन्ये महापातकसेविताः ।
व्यलीककल्पनैवैषा तस्माज्जात्यादिकल्पना ॥ ५२ ॥

इति श्रीभविष्यमहापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
पष्ठीकल्पे वर्णव्यवस्थावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

सकामा शूद्रा से ब्राह्मण संगकर गर्भ स्थापन कर देता है, और ब्राह्मणी को शूद्र के संग से गर्भ हो जाता है, फिर जाति-भेद कहाँ ठहरा? जाति-भेद तो गौ उष्ट्र घोड़े हाथी आदि पशुओं में है, जो अपनी जाति की स्त्री बिना दूसरी जाति की स्त्री से संग नहीं करते, और न दूसरी जाति में गर्भ रख सकते हैं। पशु जाति की स्त्री से मनुष्य संग करे तो सुख नहीं होता, और न गर्भ रहता है, इसी प्रकार मनुष्य स्त्री यदि पशु से संग करे, तो न गर्भ रहे, और न उसको आनन्द हो, परन्तु मनुष्य

जाति में किसी वर्ण के साथ संग करे, तब भी आनन्द मिले और गर्भ धारे। इससे जाति-भेद नहीं बन सकता है; यह जो मनुष्यों में जाति की कल्पना है, सो केवल व्यवहार के लिये संकेत है; वास्तव में सत्य नहीं है। ३८ से ५२।

इति त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।

ब्रह्मोवाच

हेयोपादेयतत्त्वज्ञास्त्यक्तान्यायपथागमाः।
जितेन्द्रियमनोवाचः सदाचारपरायणाः ॥ १ ॥
नियमाचारवृत्तस्था हितान्वेषणतत्पराः।
संसाररक्षणोपायक्रियायुक्तमनोरथाः ॥ २ ॥
सम्यग्दर्शनसम्पन्नाः समाधिस्था हतक्रुधः।
स्वाध्यायभक्तहृदयास्त्यक्तसङ्गा विमत्सराः ॥ ३ ॥
विशोकाः विमदाः शान्ताः सर्वप्राणिहितैषिणः।
सुख-दुःखसमालोका विविक्तस्थानवासिनः ॥ ४ ॥
व्रतोपयुक्तसर्वाङ्गा धार्मिकाः पापभीरवः।
निर्ममा निरहङ्कारा दानशूरा दयापराः ॥ ५ ॥
सत्यब्रह्मविदः शान्ताः सर्वशास्त्रेषु निष्ठिताः।
सर्वलोकहितोपाय-प्रवृत्तेन स्वयम्भुवा ॥ ६ ॥
वागीश्वरेण देवेन नाभेयेन भवच्छिदा।
ब्रह्मणा कृतमर्यादास्त एव ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ७ ॥
महातपोधनैरार्यैः सर्वसत्त्वाभयप्रदैः।
सर्वलोकहितार्थाय निपुणं सुप्रतिष्ठितम् ॥ ८ ॥

चारों वर्णों के लक्षण और उनमें भेदका हेतुः--

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! जो ग्राह्य अग्राह्य तत्त्व को जानें, अन्याय और कुमार्ग का त्याग करें, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, और सदाचारी हों, नियम, आचार, और सद्वृत्त में स्थिर रहें, सब के हित में तत्पर हों भली भांति वेद-वेदाङ्ग और शास्त्र जानते हों, समाधि में स्थित हों क्रोध-हीन हों, मत्सर, मद, शोक, आदि से वर्जित हों, वेद के पठन-पाठन में आसक्त हों, विशेष करके किसी का संग न करें, एकान्त स्थान में रहें, दानशूर, ब्रह्मवेत्ता, शान्त-स्वभाव, तथा तपस्वी हों, वे ब्राह्मण कहाते हैं; इस प्रकार के ब्राह्मण जगत् के हित के लिये उत्पन्न किये गये हैं, । १ । ८ ॥

बृहत्त्वाद्भगवान् ब्रह्मा नाभेयस्तस्य ये जनाः ।
भक्त्यासक्ताः प्रपन्नाश्च, ब्राह्मणास्ते प्रकीर्तिताः ॥९॥
क्षत्रियास्तु क्षतत्राणाद्, वैश्या वार्ताप्रसेवनात् ।
ये तु श्रुतेर्द्रुतिम्प्राप्ताः शूद्रास्तेनेह कीर्तिताः ॥ १० ॥
ये चाचाररताः प्राहुर्ब्राह्मण्यं ब्रह्मवादिनः ।
ते तु फलं प्रशंसन्ति यत्सदा मनसेप्सितम् ॥ ११ ॥
क्षमा दमो दया दानं सत्यं शौचं धृतिर्घृणा ।
मार्दवार्जवसन्तोषाऽनहङ्कारतपःशमाः ॥ १२ ॥
धर्मो ज्ञानमपैशुन्यं ब्रह्मचर्यममूढता ।
ध्यानमास्तिक्यमद्वेषो वैराग्यञ्च शमात्मता ॥ १३ ॥
पापभीरुत्वमस्तेयममात्सर्यमतृष्णता ।
नैःसङ्ग्यं गुरुशुश्रूषा मनोवाक्कायसंयमः ॥ १४ ॥
य एवम्भूतमाचारमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
ब्राह्मण्यं पुष्कलं तेषां नित्यमेव प्रवर्धते ॥ १५ ॥
ते स्वमतास्वादलब्धवर्णाचारा महौजसः ।
सर्वशास्त्राऽविरोधेन पवित्रीकृतमानसाः ॥ १६ ॥

सज्जनाभिमताः प्राज्ञाः पुराणागमपण्डिताः ।
गीतगीतागमाचाराः स्मृतिकाराः पठन्ति च ॥ १७ ॥
मन्वन्तरेषु सर्वेषु चतुर्युगविभागशः ।
वर्णाश्रमाचारकृतं कर्म सिद्ध्यत्यनुत्तमम् ॥ १८ ॥
संसिद्धायां तु वार्तायां ततस्तेषां स्वयं प्रभुः ।
मर्यादां स्थापयामास यथारब्धां परस्परम् ॥ १९ ॥
ये वै परिगृहीतारस्तेषां सत्त्वबलाधिकाः ।
इतरेषां क्षतत्राणान्स्थापयामास क्षत्रियान् ॥ २० ॥
उपतिष्ठन्ति ये तान्वै याचन्तो नर्मदाः सदा
[बोधयन्तोऽतिनिर्भयाः] ।
सत्यं ब्रह्म सदाभूतं वदन्तो ब्राह्मणास्तु ते ॥ २१ ॥
ये चान्येऽप्यबलास्तेषां वैश्यकर्मणि संस्थिताः ।
कीलानि नाशयन्ति स्म पृथिव्यां प्रागतन्द्रिताः ॥ २२ ॥
वैश्यानेव तु तानाह कीनाशान्वृत्तिमाश्रितान् ।
शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये रताः ।
निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च शूद्रांस्तानब्रवीत्तु सः ॥ २३ ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाञ्च परस्परम् ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ २४ ॥

पहले मनुष्य ब्रह्म के भक्त होने से ब्राह्मण, क्षत से रक्षा करने से क्षत्रिय, व्यापार का सेवन करने से वैश्य, और वेद मार्गसे च्युत होने से शूद्र, कहाये । ९–१० । ब्रह्मदेवने क्षमा, दम, शम, दान, सत्य, शौच धृति, दया, मृदुता, ऋजुता, सन्तोष, तप, निरहंकारता, अक्रोधता, अनसूयता, अस्तेय, अमात्सर्य, अपैशुन्य, धर्म, ज्ञान, ब्रह्मचर्य्य, ध्यान, आस्तिक्य, वैराग्य, पाप-भीरुत्व, अद्वेष, गुरु-शुश्रूषा, आदि गुण जिनमें देखा उनको, त्रेतायुग के आदि में ब्राह्मण ठहराया । १२ । १५ ॥ जो बलवान् और दूसरे की रक्षा करने में समर्थ थे वे क्षत्रिय कहाये; जो

वृत्ति और धन के उपार्जन में तत्पर हुए वे वैश्य कहाये, और जो निस्तेज और अल्प-बल वाले पुरुष शोचते और द्रवते हुए, इन तीनों की सेवा में तत्पर हुए वे शूद्र हुए। इस प्रकार अपने स्वभाव के अनुसार वर्णों की कल्पना हुई ॥ २२-२४ ॥

शमस्तपो दमः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥ २५ ॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ २६ ॥
कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ २७ ॥

शम, दम, तप, शौच, क्षमा, अकुटिलता, शास्त्र का ज्ञान, और उसका पूर्ण अनुभव, तथा आस्तिकता, ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं; शौर्य, तेज, धृति, कुशलता, युद्ध में पीछे न हटना, दान, स्वतः सिद्ध शासन, ये क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं; खेती, गो-पालन और व्यापार करना वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं; तथा शूद्र का स्वाभाविक कर्म, सेवा करना है, ॥ २५-२७ ॥

योगस्तपो दया दानं सत्यं धर्मश्रुतिर्घृणा।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ २८ ॥
शिखाज्ञानमयी यस्य पवित्रञ्च तपोमयम्।
ब्राह्मण्यं पुष्कलं तस्य मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥२९॥
यत्र वा तत्र वा वर्णे उत्तमा-ऽधम-मध्यमाः।
निवृत्तः पापकर्मभ्यो ब्राह्मणः स विधीयते ॥ ३० ॥
शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो ब्राह्मणादधिको भवेत्।
ब्राह्मणो विगताचारः शूद्राद्धीनतरो भवेत् ॥ ३१ ॥

जिसकी ज्ञानमयी शिखा, और तपः स्वरूप यज्ञोपवीत हो, उसको स्वायंभुव (ब्रह्मपुत्र) मनु ने ब्राह्मण कहा है। चाहे किसी भी वर्ण में

पैदा हुआ हो, पाप कर्मों से हटकर शुद्ध आचरण रखने से वह ब्राह्मण ही है। शील से सम्पन्न शूद्र भी ब्राह्मण से अधिक (बड़ा) होता है, आचारहीन ब्राह्मण शूद्र से भी अधिक निहीन, पतित हो जाता है, ॥ २९–३१ ॥

न सुरां सन्धयेद्यस्तु आपणेषु गृहेषु च।
न विक्रीणाति च तथा सच्छूद्रो हि स उच्यते ॥ ३२ ॥
यद्येका स्फुटमेव जातिरपरा कृत्यात्परं भेदिनी।
यद्वा व्याहृतिरेकतामधिगता यच्चान्यधर्मं ययौ ॥
एकैकाखिलभावभेदनिधनोत्पत्तिस्थितिव्यापिनी।
किं नासौ प्रतिपत्तिगोचरपथं यायाद्विभक्त्या नृणाम् ॥३३॥

इति श्रीभविष्यपुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे वर्णविभागविवेकवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।

जो शूद्र अपने घर में मदिरा न बनावे, तथा बाजार में बेचे भी न; वह 'सत्-शूद्र' माना जाता है। पहले तो जीवमात्र एक-जाति है, फिर मनुष्यादि भिन्न भिन्न हैं, उनमें स्त्री-पुरुषादि के भेद हैं; उनमें भी बालक, तरुण, वृद्ध आदि आवस्थिक जाति भेद है। इसके विना और जाति की कल्पना संकेत मात्र है।३२।३३।

इति चतुश्चत्वारिंशोऽऽध्यायः

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इदं श्रृणु मयाऽऽख्यातं तर्कपूर्वमिदं वचः।
युष्माकं संशये जाते, कृते वै जाति-कर्मणोः ॥ १ ॥

पुनर्वक्ष्मि निवोधध्वं समासान्न तु विस्तरात् ।
संसिद्धिं यान्ति मनुजा जातिकर्मसमुच्चयात् ॥२॥
सिद्धिं गच्छेद्यथाकार्यं दैवकर्मसमुच्चयात् ।
एवं संसिद्धिमायाति पुरुषो जातिकर्मणोः ॥ ३ ॥
इत्येवमुक्तवान्पूर्वं शिष्याणां वोधने पुरा ।
योगीश्वरो महातेजाः समासान्न तु विस्तरात् ॥ ४ ॥

सुमन्तुरुवाच

इति पृष्टः पुरा ब्रह्मा ऋषीन्प्रोवाच भारत ।
सवितर्कमिदं वाक्यं विप्रर्षे जातिकर्मणोः ॥ ५ ॥
तस्मात्त्वया महावाहो न कार्यो विस्मयो नृप ।
कार्तिकेयस्प्रति सदा देवानां दुर्विदा गतिः ॥ ६ ॥

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे कार्तिकेयवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

ब्रह्माजी बोले—कि हे मुनीश्वरो ! हमने यह तर्क से पूर्ण वचन आपको संशय हो जाने पर, और जाति कर्म के विषय मे विस्तार से कहा है, अब संक्षेप से असली तत्त्वको कहता हूँ; सो समझो । जैसे भाग्य और पौरुष के परस्पर मिलने पर कार्य-सिद्धि होती है, उसी तरह उत्तम जाति और उत्तम कर्म के मेल से ही ब्राह्मणत्व-प्रभृति वर्णकी पूर्ण सिद्धि होती है; न कि केवल जन्म से ।

इति पञ्चचत्वादिंशोऽऽध्यायः

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

हरिः ॐ तत्सत्

धम्म-पदं

ब्राह्मणवग्गो

छिन्द सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण।
संखारानं खयं ञत्वा अकतञ्ञूसि ब्राह्मण ॥१॥

हे ब्राह्मण, (तृष्णा के) स्रोत को छिन्न कर दे, पराक्रम कर, कामनाओं को भगा। हे ब्राह्मण! संस्कारों के क्षय को जानकर तू अकृत (=निर्वाण) का जानकार हो जा।

यदा द्वयेसु धम्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो।
अथस्स सब्बे संयोगा अत्थं गच्छन्ति जानतो ॥२॥

जब ब्राह्मण, चित्तसंयम और भावना, इन दो बातों में पारंगत हो जाता है, तब उस ज्ञानी के सभी बन्धन कट जाते हैं।

यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति।
वीतद्दरं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

जिसका पार, अपार और पारापार नहीं है, जो निर्भय और अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

झायिं विरजमासीनं कतकिच्चं अनासवं।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४ ॥

जो ध्यानी है, जो निर्मल है, जो एकान्त-सेवी है, कृतकृत्य है, जो आस्रवरहित है, जिसने उत्तम अर्थ को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा।
सन्नद्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तं बुद्धो तपति तेजसा ॥ ५ ॥

दिन में सूर्य चमकता है, रात को चन्द्रमा चमकता है, कवचबद्ध (होने पर) क्षत्रिय चमकता है, ध्यानी (होने पर) ब्राह्मण चमकता है, लेकिन बुद्ध अपने तेज से सदैव दिन-रात चमकते हैं।

बाहितपापोति ब्राह्मणो समचरिया समणोति वुच्चति।
पब्बाजयमत्तनो मलं तस्मा पब्बजितोति वुच्चति ॥ ६ ॥

जिसने पापों को बहा दिया है, वह ब्राह्मण है, जिसकी चर्या ठीक (= सम) है, वह श्रमण है; जिसने अपने (चित्त-) मलों को हटा दिया, वह प्रव्रजित कहलाता है।

न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो।
धि ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धि यस्स मुञ्चति ॥ ७ ॥

ब्राह्मण पर प्रहार न करे; (ब्राह्मण को चाहिये कि) प्रहारकर्त्ता पर कोप न करे। ब्राह्मण पर प्रहार करनेवाले को धिक्कार है, लेकिन उससे अधिक धिक्कार है उस ब्राह्मण को जो प्रहार-कर्ता पर कोप करे।

न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि सेय्यो यदा निसेधो मनसो पियेहि।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति ततो ततो सम्मतिमेव दुक्खं ॥८॥

ब्राह्मण के लिये यह बात बहुत कल्याणकारी है, जो वह प्रिय वस्तुओं से मन को हटा लेता है; जहाँ जहाँ मन हिंसा से विमुख होता है, वहाँ दुख शान्त होता ही है।

यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं।
संवुतं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ९ ॥

जिसके शरीर, वाणी तथा मन से कोई पाप नहीं होता, जो इन तीनों स्थानों में संयत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

यम्हा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्बुद्धदेसितं।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य अग्गिहुत्तंव ब्राह्मणो ॥ १० ॥

जिस उपदेशक से बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म जाने, उसे वैसे ही नमस्कार करे, जैसे ब्राह्मण अग्नि-होत्र को।

न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥११॥

न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ब्राह्मण होता है; जिसमें सत्य और धर्म है, वही व्यक्ति पवित्र है और वही ब्राह्मण है।

किं ते जटाहि दुम्मेध ! किं ते अजिन-साटिया।
अब्भन्तरं ते गहणं बाहिरं परिमज्जसि ॥ १२ ॥

हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तुझे क्या (लाभ ?) और मृग-चर्म के पहनने से क्या ? अन्दर से तो तू मैला है, बाहर से धोता है।

पंसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं।
एकं वनस्मिं झायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १३ ॥

जो फटे पुराने वस्त्रों को धारण करता है, जो पतला दुबला है, जिसकी नसें दिखाई देती हैं, जो वन में अकेला ध्यान करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसंभवं।
'भो वादी' नाम सो होति, स चे होति सकिञ्चनो।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१४॥

मैं ब्राह्मणी-माता से पैदा होने के कारण किसी को ब्राह्मण नहीं कहता। यदि वह सम्पन्न होता है तो उसे 'भो' से सम्बोधन किया जाता

है। जिसके पास कुछ नहीं है, और जो कुछ नहीं लेता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

सब्बसञ्ञोजनं छेत्वा यो वे न परितस्सति।
सङ्गातिगं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ १५॥

जो सब बन्धनों को काटता है, जो निर्भय है, जो संग और आसक्ति से रहित है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

छेत्वा नद्धिं वरत्तञ्च सन्दामं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥१६॥

नद्धि, रस्सी, पगहे, और मुँह पर बाँधने के जाले को काट, जूए को फेंक, जो बुद्ध हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

अक्कोसं वधबन्धञ्च अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ १७॥

गाली, वध और बंधन को जो विना चित्त को दूषित किए सहन करता है, क्षमा-बल ही जिसकी सेना का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

अक्कोधनं वतवन्तं सीलवन्तं अनुस्सदं।
दन्तं अन्तिमसारीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ १८॥

जो अक्रोधी है, जो व्रती है, जो सदाचारी है, जो तृष्णा-रहित है, जो संयमी है, जो अन्तिम शरीरधारी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

वारि पोक्खरपत्तेव आरग्गेरिव सासपो।
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ १९॥

कमल के पत्ते पर पानी की बूँद और आरे की नोक पर सरसों के दाने की भाँति जो काम-भोगों में अलिप्त रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

यो दुक्खस्स पजानाति इधेव खयमत्तनो ।
पन्नभारं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २० ॥

जो इसी जन्म में अपने दुःख के क्षय को जानता है, जिसने अपना भार उतार दिया है, जो आसक्ति-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

गम्भीरपञ्ञं मेधाविं मग्गामग्गस्स कोविदं ।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २१ ॥

जो गम्भीर प्रज्ञावाला है, जो मेधावी है, जो मार्ग-अमार्ग को पहचानता है, जिसने उत्तम-अर्थ को प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

असंसट्ठं गहट्ठेहि अनागारेहि चूभयं ।
अनोकसारिं अप्पिच्छं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २२ ॥

जो गृहस्थ और प्रव्रजित दोनों से अलिप्त रहता है, जो इच्छा-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२३॥

जो चर-अचर सभी प्राणियों की हिंसा से विरत हो, न किसी को मारता है, न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

अविरुद्धं विरुद्धेसु अत्तदण्डेसु निब्बुतं ।
सादानेसु अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२४॥

जो विरोधियों में अविरोधी, जो दण्डधारियों में दण्डत्यागी, जो संग्रह करनेवालों में असंग्रही है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

यस्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो ।
सासपोरिव आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२५॥

जिस (के चित्त) से राग, द्वेष मान और डाह ऐसे ही गिर पड़े हैं जैसे आरे के ऊपर से सरसों के दाने, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

अकक्कसं विञ्ञापनिं गिरं सच्चं उदीरये ।
याय नाभिसजे कञ्चि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२६ ॥

जो अकर्कश, विषय को स्पष्ट करनेवाली तथा सच्ची वाणी बोलता है जिससे किसीको पीड़ा नहीं पहुँचती, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

योध दीघं वा रस्सं वा अणुं थूलं सुभासुभं ।
लोके अदिन्नं नादियति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२७॥

चाहे लम्बी हो चाहे छोटी, चाहें मोटी हो चाहे पतली, चाहे अच्छी हो चाहे बुरी, जो संसार में किसी भी चीज़ की चोरी नहीं करता उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

आसा यस्स न विज्जन्ति अस्मिं लोके परम्हि च ।
निरासयं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२८॥

इस लोक और परलोक की (किसी चीज़ में) जिसकी इच्छा नहीं है, जो इच्छा-रहित है, जो आसक्ति-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

यस्सालया न विज्जन्ति अञ्ञाय अकथंकथी ।
अमतोगधं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२९॥

जो आसक्ति-रहित है, जो जानकार होने से संशय-रहित है जिसने गाढ़े अमृत को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

योध पुञ्ञञ्च पापञ्च उभो सङ्गं उपच्चगा ।
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३०॥

जो इस संसार में पुण्य और पाप दोनों से परे है, जो शोक-रहित है, जो निर्मल है, जो शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

चन्दंव विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं।
नन्दाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३१॥

जो चन्द्रमा की भांति विमल, शुद्ध और स्वच्छ है, जिसकी भव-तृष्णा नष्ट हो गई है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा।
तिण्णो पारगतो झायी अनेजो अकथंकथी।
अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३२॥

जिसने इस दुर्गम संसार (जन्म मरण) के चक्कर में डालनेवाले मोह-स्वरूप उलटे मार्ग को त्याग दिया, जो तीर्ण हो गया, जो पार कर गया, जो ध्यानी है, जो स्थिर है, जो संशयरहित है, जिसने उपादान-रहित निर्वाण को प्राप्त कर लिया, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

योध कामे पहत्वान अनागारो परिब्बजे।
कामभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३३॥

जो काम भोगों को छोड़ बेघर हो प्रव्रजित हो गया है, जिसका काम-भव नष्ट हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

योध तण्हं पहत्वान अनागारो परिब्बजे।
तण्हाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३४॥

जो तृष्णा को छोड़ बेघर हो प्रव्रजित हो गया है, जिसका तृष्णा-भव नष्ट हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

हित्वा मानुसकं योगं दिब्बं? योगं उपच्चगा।
सब्बयोगविसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३५॥

जिसने मानुषी-भोगों को छोड़ दिया, दिव्य भोगों को भी छोड़ दिया, जो सभी भोगों के प्रति अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च सीतीभूतं निरूपधिं।
सब्बलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३६॥

जिसने रति और अरति को छोड़ दिया, जो शान्त हो गया, जो क्लेश-रहित है, जिस वीर ने सारे लोक को जीत लिया, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

चुतिं यो वेदि सत्तानं उपपत्तिञ्च सब्बसो।
असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३७॥

जो प्राणियों की मृत्यु तथा उत्पत्ति को भले प्रकार जानता है, जो आसक्ति-रहित सुगति-प्राप्त बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

यस्स गतिं न जानन्ति देवा गन्धब्बमानुसा।
खीणासवं अरहन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३८॥

जिसकी गति को न देवता जानते हैं, न गन्धर्व और न मनुष्य, जो क्षीण-आस्रव है, जो अर्हत् है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

यस्स पुरे च पच्छा च मज्झे च नत्थि किञ्चनं।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३९॥

जिसकी अतीत, वर्तमान या भविष्य में कहीं कुछ आसक्ति नहीं है, जो परिग्रह-रहित, आदान-रहित है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

उसभं पवरं वीरं महेसिं विजिताविनं।
अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४०॥

जो श्रेष्ठ है, जो प्रवर है, जो वीर है, जो महर्षि है, जो विजेता है, जो स्थिर है, जो स्नातक है, जो बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

पुब्बेनिवासं यो वेदि सग्गापायञ्च पस्सति ।
अथो जातिक्खयं पत्तो अभिञ्ञावोसितो मुनि ।
सब्बवोसितवोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४१॥

जो पूर्व-जन्म को जानता है; जो स्वर्ग और नरक को देखता है, जिसका (पुनः) जन्म क्षीण हो गया, जो अभिज्ञावान् है, जिसने निर्वाण प्राप्त कर लिया, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

महाभारते सद्ब्राह्मण-लक्षणम्

भृगुः—"असृजद् ब्राह्मणानेव पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतीन्,
आत्मतेजोऽभिनिर्वृत्तान् भास्करा-ऽग्निसमप्रभान् ।
ततः सत्यं च धर्मं च तपो ब्रह्म च शाश्वतम्,
आचारं चैव शौचं च स्वर्गाय विदधे प्रभुः ।
देव-दानव-गन्धर्वा दैत्या-ऽसुर-महोरगाः,
यक्ष-राक्षस-नागाश्च पिशाचा मनुजास्तथा,—
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम ;
ये चाऽन्ये भूतसङ्घानां वर्णास्तांश्चाऽपि निर्ममे ।
ब्राह्मणानां सितो वर्णः, क्षत्रियाणां तु लोहितः,
वैश्यानां पीतको वर्णः, शूद्राणामसितस्तथा ।

भरद्वाजः—"चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते;
सर्वेषां खलु वर्णानां दृश्यते वर्णसङ्करः ।
कामः क्रोधो भयं लोभः शोकश्चिन्ता क्षुधा श्रमः,
सर्वेषां नः प्रभवति; कस्माद् वर्णो विभिद्यते ?

स्वेद-मूत्र-पुरीषाणि, श्लेष्मा पित्तं सशोणितं,
तनुः क्षरति सर्वेषां; कस्माद्वर्णो विभज्यते?
जङ्गमानामसङ्ख्येयाः स्थावराणां च जातयः;
तेषां विविधवर्णानां कुतो वर्णविनिश्चयः?
भृगुः— न विशेषोऽस्ति वर्णानां, सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्;
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्।
कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः,
त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः,
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः,
स्वधर्मान्नाऽनुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः;
हिंसाऽनृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः,
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः।

'भृगु ने भरद्वाज से कहा कि ब्रह्मा ने सबसे पहले ब्राह्मण प्रजापतियों को ही उत्पन्न किया; अर्थात् ब्रह्मा के मनःसङ्कल्प से सर्वप्रथम जो 'मरीचि'-प्रभृति प्रजापति उत्पन्न हुए, वे ब्रह्मपुत्र होने के कारण, एक ही 'ब्राह्मण' वर्ण के हुए। अनन्तर ब्रह्मा ने अपने उन्हीं मानस पुत्रों (प्रजापतियों) के द्वारा सत्य, धर्म, तपः, शाश्वत ब्रह्म (वेद) आचार, और शौच, इन स्वर्गीय सद्गुणोंका विधान किया; तथा देव, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महोरग, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच, और मनुष्य की सृष्टि की; अथच मनुष्यों में, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र, ये चार विभाग, सत्त्व, रजस्, तमस् और अनुद्बुद्ध मिश्र गुणकी प्रधानता-वाली चार प्रकृतियों (निसर्गों स्वभावों) के अनुसार, किये; साथ ही अन्यान्य भूत संघों के 'वर्णों' का भी निर्माण किया; उनमें ब्राह्मणों का वर्ण 'सित' सत्त्वगुण वा शुक्ल रङ्ग, क्षत्रियोंका वर्ण 'लोहित' रजोगुण वा रक्त रङ्ग, वैश्योंका वर्ण 'पीत' रजस्तमोव्यामिश्र गुण वा पीत रङ्ग, और शूद्रोंका वर्ण 'असित' तमोगुण वा कृष्ण रङ्ग हुआ।'

यह सुनकर, भरद्वाज ने भृगु से प्रश्न किया कि—'यदि, वाह्य, शारीरिक, रङ्गोंके आधारपर, चातुर्वर्ण्यका 'वर्ण' निश्चित और विभक्त किया जाय, तब तो बड़ी अव्यवस्था हो जायगी; क्योंकि सभी वर्णोंमें 'वर्ण-सङ्कर' रङ्गों का मिश्रण, प्रत्यक्ष ही देख पड़ता है। काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा, श्रम आदि आन्तर भाव वा प्राणि-धर्म भी हम सब मनुष्यों में होते हैं; अतः इनके अनुसार भी वर्ण-व्यवस्था असङ्कीर्ण नहीं हो सकती; सबके शरीर से स्वेद, मूत्र, पुरीष, श्लेष्मा, पित्त और शोणित आदि शरीर-विकार भी समान रूप से निकलते हैं, सुतरां इन के आधार से भी वर्ण-विभाग नहीं किया जा सकता है; तिसपर भी यह बड़ी कठिनाई है कि स्थावर और जङ्गम पदार्थों की असंख्येय जातियाँ हैं, और उनमें विविध 'वर्ण-रङ्ग' प्रकार (किस्म), निसर्ग वा स्वभाव, हैं; उन सबके वर्णों का निश्चय और असङ्कीर्ण व्यवस्थापन कैसे हो सकता है ?

इस पर भृगु ने यह उत्तर दिया कि 'वर्णों' रङ्गों का, वा वाह्याभ्यन्तर भावोंका कोई 'विशेष' (भेद) वर्णव्यवस्था के लिए मान्य तथा उपादेय नहीं है; अर्थात् रङ्ग, काम-क्रोधादि और स्वेद-मूत्रादि के कारण वर्णोंमें कुछ भी विशेषता वा भिन्नता नहीं होती। उत्पत्ति-स्थान के अनुसार भी वर्णभेद नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् ही 'ब्राह्म' ब्राह्मण, 'ब्रह्मा'का अपत्य, है; पहले कहा गया है कि 'ब्रह्मा'ने अपने समवर्ण मानस पुत्रों द्वारा देव-मनुष्यादि समग्र जगत्की सृष्टि की; अतः मूल रूप से सभी एक ही ब्राह्मण वर्ण के हुए; पश्चात् कालक्रम से शनैः शनैः उस एक ब्राह्मण वर्ण के लोग ही 'कर्मों' स्वभावज गुण-धर्मों आचारों कर्त्तव्यों तथा जीविका-कर्मों के अनुसार क्षत्रिय वैश्य और शूद्र भी हो गये। यद्यपि नैसर्गिक रूप से सभी पदार्थों और प्राणियों में वर्ण-भेद और उसका विश्लेपण किया जा सकता है, तथापि मानव समाज के लिये उसका कोई उपयोग नहीं है; और मनुष्येतर प्राणी तथा

पदार्थ, भोगयोनि, वा भोग्य-भोगायतन हैं, अतः उनमें वर्णविभाजक 'कर्म' शम-शौर्यादि, अध्ययन यजनादि, शिक्षण-रक्षणादि, अध्यापन-कृषिकर्मादि, हो नहीं सकते; इस कारण, मनुष्यों के ही वर्ण-विभाग की, ब्राह्मण से क्रमशः क्षत्रिय आदि हो जाने की, बात भृगु ने कही है; क्योंकि साक्षात्पुरुपार्थोपयोगी प्रायोगिक 'वर्ण' कर्म-मूलक वर्ण-विभाग, मनुष्य समाज में ही हो सकता है।

आगे भृगुजी ने इस प्रकार का उपसंहार करते हुए यों कहा है—

"इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः ;
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं, न प्रतिषिध्यते ;
इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती*,
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं, लोभात्त्वज्ञानतां गताः।
ब्राह्मणा ब्रह्मतन्त्रस्थास्तपस्तेषां न नश्यति,
ब्रह्मधारयतां नित्यं व्रतानि नियमांस्तथा ;
ब्रह्म चैव परं सृष्टं ये न जानन्ति ते द्विजाः ;
तेषां बहुविधास्त्वन्यास्तत्र तत्र हि जातयः—
प्रनष्टज्ञानविज्ञानाः स्वच्छन्दाचारचेष्टिताः"
[म० भा० शां० १८८, १४–१८]

अर्थात्, इन (पूर्वोक्त) कर्मोंसे प्रविभक्त होनेके कारण, 'ब्राह्मण' ही, क्षत्रिय आदि वर्णान्तरमें परिवर्तित हो गये; फिर भी यज्ञ-क्रिया आदि नित्य धर्म उन सब (चारों वर्णों)के लिये समान है; किसी भी वर्णके लिये उसका निषेध नहीं है; क्योंकि ये वे ही चार वर्ण हैं, जिनके लिये ब्रह्मा ने पहले 'ब्राह्मी सरस्वती' वेदवाणीका विधान किया था; पर, जो लोभसे अज्ञानी अब्राह्मण, हो गये; अर्थात् आदि सृष्ट ब्राह्मण ही,

*"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ; ब्रह्म-राजन्याभ्यां शूद्राय चाऽर्याय च स्वाय चाऽरणाय च" [वाज० सं० अ० २६, मं० २]

ब्राह्मण्यप्रयोजक 'ब्रह्मवाणी' विद्या,से च्युत होकर अविद्यामें पड़ते गये और तदनुसार यथायोग्य क्षत्रियादि वर्णमें बदल गये; इस प्रकार, एक ही मूल वर्ण से गुण-कर्म के अनुसार चातुर्वर्ण्य बना है, अतः मूलभूत वर्णधर्म में, ब्राह्मी विद्या और यज्ञ-क्रियादि में, चारो वर्णों का समान अधिकार है। इस अधिकार के अनुसार जो मनुष्य 'ब्रह्मतन्त्रस्थ', ब्राह्म-नियमनिष्ठ, होते हैं, वही ब्राह्मण हैं; उन सदैव 'ब्रह्म' वेद, ज्ञान, विद्या, को, तथा ब्राह्म व्रतों और नियमों को, धारण करनेवाले मनुष्यों का ब्राह्मण्याधायक तपः नष्ट नहीं होता ; अर्थात् वे ब्राह्मणत्व से च्युत होकर क्षत्रियादि में परिणत नहीं होते हैं। इसके विपरीत, जो लोग, 'परंसृष्टं' परम उत्कृष्ट, सर्वश्रेष्ठ रूप में, प्रथमोत्पादित, 'ब्रह्म' को सज्ज्ञान को, नहीं जानते, भूल जाते हैं, वे 'अद्विज' अब्राह्मण, मूल वर्ण से च्युत, क्षत्रिय आदि हो जाते हैं। उन 'अद्विजों' मूल वर्ण ब्राह्मण्य से पतित लोगों की क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अतिरिक्त और भी बहुत प्रकार की जातियां, देश काल परिस्थिति आदि के अनुसार बन जाती हैं ; पिशाच, राक्षस, प्रेत, तथा विविध म्लेच्छ जातियां, भी उन्हीं 'अद्विजों' से बनी हैं, जो ज्ञान-विज्ञान के नष्ट हो जाने से, और स्वच्छन्द,उच्छृङ्खल,आचार-व्यवहार करने से, मूल और औत्सर्गिक वर्ण 'ब्राह्मण्य' से गिर गये ; ब्रह्म-पिशाच, ब्रह्मराक्षस, ब्रह्मचण्डाल आदि शब्द वैसी ही जातियों की ओर संकेत करते हैं, जो मूलभूत, आदिसृष्ट, एक ही ब्राह्मण वर्ण से, तत्तत्कर्मयोग से बन गई हैं।

इस प्रकार भृगु-भरद्वाज-संवाद में कर्मणा वर्णव्यवस्था की ही मुख्य-पक्षता और प्रधानकल्पता दिखलाकर वक्ष्यमाण—'प्रजा ब्राह्मणसंस्काराः'—श्लोक में गौणपक्षरूप से यह भी सूचित कर दिया है कि ऋषिलोग कभी-कभी कर्त्तव्य-पालन की प्रतिज्ञा लेकर ब्राह्मसंस्कार द्वारा प्रजाजनों को संघशः भी ब्राह्मण बना लिया करते थे। यह ब्राह्मणीकरण का विधान उपलक्षण मात्र है ; इससे यह भी समझना चाहिये कि जो लोग क्षत्रिय

आदि बनना चाहते थे, उनसे क्षात्र-धर्मादि के पालन का शपथ लेकर ऋषिगण, उन्हें भी तत्तदभीष्ट वर्ण में दीक्षित और दाखिल कर देते थे।

प्रजा ब्राह्मण-संस्काराः, स्वकर्मकृतनिश्चयाः ;
ऋषिभिः स्वेन तपसा सृज्यन्ते चाऽपराऽपराः[1]
आदिदेवसमुद्भूता ब्रह्ममूलाऽक्षयाऽव्यया ;
सा सृष्टिर्मानसी नाम, धर्मतन्त्रपरायणा।
भरद्वाजः—ब्राह्मणः केन भवति, क्षत्रियो वा द्विजोत्तम !
वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे, तद्ब्रूहि वदतां वर !
भृगुः—जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः,
वेदाऽध्ययनसम्पन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः,
शौचाचारस्थितः सम्यग्विघसाशी गुरुप्रियः,
नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते।
सत्यं दानमथाऽद्रोहः, आनृशंस्यं त्रपा घृणा,
तपश्च दृश्यते यत्र, स ब्राह्मण इति स्मृतः।
क्षत्रजं सेवते कर्म, वेदाऽध्ययनसङ्गतः,
दानाऽऽदानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते।
वणिज्या पशुरक्षा च कृष्यादानरतिः शुचिः,
वेदाऽध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः।
सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः,

---

[1] पुराकालमें ऋषिगण, अपने तपःप्रभाव से ब्राह्मसंस्कारद्वारा, उन प्रजा-जनों को सङ्घशः (दल के दल को) ब्राह्मण बना लेते थे, जो स्वकर्म का, (ब्राह्मण बन जाने पर तदुचित कर्त्तव्यपालन का) निश्चय करते [शपथ, व्रत वा प्रतिज्ञा लेते] थे''। यह भी वर्णपरिवर्तन की एक पद्धति थी। अर्वाक्काल तक यह प्रथा प्रचलित थी। श्रीरामानन्दादि महात्माओं के शिष्योंने मिश्रदेश आदि बाह्यस्थानों में भी जाकर, वहां के निवासियों को चातुर्वर्ण्य हैन्दवधर्ममें दीक्षित किया था।

त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः ।
शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्म, द्विजे तच्च न विद्यते ;
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो, ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ।
शौचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः ,
साऽनुक्रोशश्च भूतेषु तद् द्विजातिषु लक्षक्षणम्"॥

[इति महाभारते शान्तिपर्वणि भृगु-भरद्वाज-संवादे अ० १८८–८९]

जैनागमे ब्राह्मणादि-लक्षणम्

"संस्कारैः स्याद्द्विजातित्वम् , असंस्कारास्तु न द्विजाः ।
इज्या वार्ता च दत्तिश्च स्वाध्यायः संयमस्तपः ।
उपासकागमे प्रोक्ता द्विजादीनां हि वृत्तयः ।
द्विर्जाता हि द्विजन्मानः, क्रियातो गर्भतश्च ये ।
मन्त्र-क्रिया विहीनास्ते केवलं नामधारकाः ।
ब्राह्मणा व्रत-संस्कारात् , क्षत्रियाः शस्त्रधारणात् ,
वणिजः कृषिवाणिज्यात् , क्रिया-मन्त्रसमन्विताः" ।

(श्रीवसुनन्दि-प्रतिष्ठासारे)

जैन आदिपुराणे पर्व १६

"पुरां विभागमित्युच्चैः कुर्वन्गीर्वाणनायकः,
तदा पुरन्दरख्यातिमगादन्वर्थतां गताम् ॥ १७७ ॥
ततः प्रजा निवेश्यैषु स्थानेषु स्रष्टुराज्ञया,
जगाम कृतकार्यो गां, मघवाऽनुज्ञया प्रभोः ॥ १७८ ॥
असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च,
कर्माणीमानि षोढ़ा स्युः प्रजाजीवनहेतवे ॥ १७९ ॥

तत्र वृत्तिं प्रजानां स भगवान्मतिकौशलात्,
उपादिशत्सरागो हि स तदाऽऽसीज्जगद्गुरुः ॥ १८० ॥
तत्राऽसि-कर्म सेवायां, मषिर्लिपिविधौ स्मृता,
कृषिर्भूकर्षणे प्रोक्ता, विद्या शास्त्रोपजीवने ॥ १८१ ॥
वाणिज्यं वणिजां कर्म, शिल्पं स्यात्करकौशलम्,
तच्च चित्रकला-पत्रच्छेद्यादि बहुधा स्मृतम् ॥ १८२ ॥
उत्पादितास्त्रयो वर्णास्तदा तेनाऽऽदिवेधसा,
क्षत्रिया वणिजः शूद्राः, क्षतत्राणादिभिर्गुणैः ॥ १८३ ॥
क्षत्रियाः शस्त्रजीवित्वमनुभूय तदाऽभवन्,
वैश्याश्च कृषि-वाणिज्य-पाशुपाल्योपजीविनः ॥ १८४ ॥
तेषां शुश्रूषणाच्छूद्रास्ते द्विधा कार्वकारवः।
कारवो रजकाद्याः स्युस्ततोऽन्ये स्युरकारवः ॥ १८५ ॥

जैन आदिपुराणे प० ३८

"विशुद्धावृत्तिरेषैषां षट्तयीष्टा द्विजन्मनाम्,
योऽतिक्रामेदिमां, सोऽज्ञो नाम्नैव, न गुणैर्द्विजः ॥ ४२ ॥
तपः श्रुतं च जातिश्च त्रयं ब्राह्मण-कारणम्,
तपः-श्रुताभ्यां यो हीनो, जाति-ब्राह्मण एव सः ॥ ४३ ॥
अपापोपहता वृत्तिः स्यादेषां जातिरुत्तमा,
दत्तीज्याऽधीतिमुख्यत्वाद् व्रतशुद्ध्या सुसंस्कृता ॥ ४४ ॥
मनुष्य-जातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा,
वृत्तभेदाहिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥ ४५ ॥
ब्राह्मणा व्रत-संस्कारात्, क्षत्रियाः शस्त्रधारणात्,
वणिजोऽर्थार्जनान्न्याय्यात्, शूद्रा न्यग्वृत्ति-संश्रयात्
तपः-श्रुताभ्यामेवातो जातिसंस्कार इष्यते,

असंस्कृतस्तु यस्ताभ्यां, जातिमात्रेण स द्विजः ॥ ४४ ॥
द्विर्जातो हि द्विजन्मेष्टः, क्रियातो गर्भतश्च यः,
क्रिया-मन्त्रविहीनस्तु, केवलं नामधारकः ॥ ४८ ॥

जैन-वाङ्मये वर्णव्यवस्था

"उदार विचार—आचार्य प्रभाचन्द्र सच्चे तार्किक थे। उनकी तर्कणा-शक्ति और उदार विचारों का स्पष्ट परिचय ब्राह्मणत्व जाति के खण्डनके प्रसङ्ग में मिलता है। इस प्रकरण में उन्होंने ब्राह्मणत्व जाति के नित्यत्व और एकत्व का खण्डन करके उसे सदृश परिणमन रूप ही सिद्ध किया है। वे जन्मना जाति का खण्डन वहुविध विकल्पों से करते हैं, और स्पष्ट शब्दों में उसे गुण-कर्माऽनुसारिणी मानते हैं। वे ब्राह्मणत्व जाति-निमित्तक वर्णाश्रमव्यवस्था, और तप, दान आदि के व्यवहार को भी क्रिया-विशेष और यज्ञोपवीत आदि चिह्न से उपलक्षित व्यक्ति-विशेष में ही करने की सलाह देते हैं—

"ननु ब्राह्मणत्वादि-सामान्याऽनभ्युपगमे कथं भवतां वर्णाऽऽश्रम-व्यवस्था, तन्निवन्धनो वा तपो-दानादि-व्यवहारः स्यात् ? इत्यप्यचोद्यम् ; क्रियाविशेष-यज्ञोपवीतादिचिह्नोपलक्षिते व्यक्ति-विशेषे तद्व्यवस्थायास्तद्व्यवहारस्य चोपपत्तेः। तन्न भवत्कल्पितं नित्यादिस्वभावं ब्राह्मण्यं कुतश्चिदपि प्रमाणात्प्रसिद्ध्यतीति क्रिया-विशेषनिवन्धन एवाऽयं ब्राह्मणादिव्यवहारो युक्तः"।

(न्यायकुमुदचन्द्र पृ० ७७८; प्रमेयकमलमार्तण्ड पृ० ४८६)

प्रश्न—यदि ब्राह्मणत्व आदि जातियाँ नहीं हैं, तव जैन मत में वर्णाश्रमव्यवस्था और ब्राह्मणत्व आदि जातियों से सम्बन्ध रखनेवाला तप, दान आदि व्यवहार कैसे होगा ?

उत्तर—जो व्यक्ति यज्ञोपवीत आदि चिह्नों को धारण करें तथा ब्राह्मणों के योग्य विशिष्ट क्रियाओं का आचरण करें, उनमें ब्राह्मणत्व जाति से सम्बन्ध रखनेवाली वर्णाश्रमव्यवस्था और तप, दान आदि व्यवहार भलीभाँति किये जा सकते हैं। अतः आपके (जातिवादियों के) द्वारा माना गया नित्य आदि स्वभाववाला ब्राह्मणत्व किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता ; इस लिये ब्राह्मण आदि व्यवहारोंको क्रियाऽनुसार ही मानना युक्तिसङ्गत है।

वे (आचार्य प्रभाचन्द्र) प्रमेयकमलमार्त्तण्ड (पृ० ४८७) में और भी स्पष्टता से लिखते हैं कि—"ततःसदृशक्रिया परिणामादिनिबन्धनैवेयं ब्राह्मण क्षत्रियादि-व्यवस्था" [इस लिये यह समस्त ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि व्यवस्था सदृश क्रिया और सदृश परिणमन आदि के निमित्त से होती है] बौद्धों के धम्मपद, और श्वेताम्बर आगम'उत्तराध्ययन'-सूत्र में स्पष्ट शब्दों में ब्राह्मणत्व जाति को गुण और कर्म के अनुसार बताकर, उसको जन्मना मानने के सिद्धान्त का खण्डन किया है।

"न जटाहि न गोत्तेहि, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
न चाऽहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसंभवं" [धम्मपदे]
"कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ,
वईसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा" [उत्तरा० २५।३३]

दिगम्बर आचार्यों में वराङ्गचरित्र के कर्त्ता श्री जटा सिंह नन्दि, कितने स्पष्ट शब्दों में जाति को क्रिया निमित्तक लिखते हैं—

"क्रियाविशेषाद्,व्यवहारमात्राद्,दया-ऽभिरक्षा-कृषि-शिल्पभेदात्,
शिष्टाश्च वर्णाश्चतुरो वदन्ति; न चाऽन्यथा वर्णचतुष्टयं स्यात्"
[वराङ्ग-चरित २५।११]

[शिष्टजन, इन ब्राह्मण आदि चारों वर्णों को, अहिंसा आदि व्रतों का पालन, रक्षा करना, खेती आदि करना, तथा शिल्प वृत्ति, इन चार

प्रकार की क्रियाओं से ही मानते हैं। यह सब वर्णव्यवस्था व्यवहार मात्र है; क्रिया के सिवाय और कोई वर्णव्यवस्था का हेतु नहीं है]

ऐसे ही विचार तथा उद्गार 'पद्मपुराण'कार रविषेण, 'आदि'पुराण-कार जिनसेन, तथा 'धर्मपरीक्षा'कार अमितगति आदि आचार्यों के पाये जाते हैं [द्रष्टव्य-न्यायकुमुदचन्द्र, द्वितीय भाग, पृ० ७७८, टि० ६]। आचार्य प्रभाचन्द्र ने, इन्हीं वैदिक संस्कृति द्वारा अनभिभूत, परम्परागत जैन संस्कृति के विशुद्ध विचारों का, अपनी प्रखर तर्क-धारा से परिसिञ्चन कर पोषण किया है। यद्यपि ब्राह्मणत्व जाति का खण्डन करते समय प्रभाचन्द्र ने प्रधानतया उसके नित्यत्व और ब्रह्म-प्रभवत्व आदि अंशों के खण्डन के लिये इस प्रकरण को लिखा है, और इसके लिखने में प्रज्ञाकर गुप्त के प्रमाणवार्तिकालङ्कार, तथा शान्त-रक्षित के तत्त्वसंग्रहने पर्याप्त प्रेरणा दी है; परन्तु इससे प्रभाचन्द्र की अपनी जाति-विषयक स्वतन्त्र चिन्तन वृत्ति में कोई कमी नहीं आती। उन्होंने उसके हर एक पहलू पर विचार करके ही अपने उक्त विचार स्थिर किये"।

[न्यायकु० द्वितीय भा० प्रस्तावना पृ० ४७—४८]

"आब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्, आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्, दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वान्, आशुः सप्तिः, पुरन्धिर्योषा, जिष्णू रथेष्ठाः, सभेयो युवा,ऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्; निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्, योगक्षेमो नः कल्पताम्"—[वाज० सं० २२,२२]

"जायतां ब्रह्मवर्चस्वी राष्ट्रे वै ब्राह्मणः शुचिः ; महारथश्च राजन्य एष्टव्यः शत्रुतापनः"—

[म० भा० अनु० ३४, ४].

ॐ तत्सत् ; ॐ शान्तिः ; हरिः ॐ



परमहंस महात्म